□□



उद्देश्य

अगर आप सोचते हैं कि बच्चों के अच्छे उपन्यास हिन्दी में नहीं हैं, तो निश्चय ही आपको हमारी किशोरों के लिए उपयोगी पुस्तकें पढ़ने या देखने का अवसर नहीं मिला है। एक दो या चार-दस नहीं, बल्कि ७५ से भी ज्यादा किशोर-उपन्यास हम प्रकाशित कर चुके हैं, आगे और करने जा रहे हैं।

विषय भी हमने अनेक चुने हैं। ऐतिहासिक नायक-नायिकाएं, 'अरब की रातों' के राजा-रानी, ज्ञान विज्ञान का मनोरंजन, रामायण और महाभारत के पात्र, राष्ट्र और विभिन्न धर्मों के नायक, शिकार की रोमांचकारी घटनाएं, प्रख्यात साहित्यकारों का जीवन और शेक्सपियर के नाटकों के रूपान्तर—कोई भी तो विषय ऐसा नहीं, जिसकी जानकारी निहायत दिलचस्प उपन्यासों के माध्यम से न दी गई हो। बच्चे तो बच्चे, बच्चों के माता-पिता भी अगर इन्हें ले बैठें तो पढ़ते रह जाएं।



कहने को तो ये किशोर-उपन्यास हैं, किन्तु नवसाक्षरों तथा अहिन्दी-भाषी पाठकों के लिए भी ये समान रूप से उपयोगी हैं।

राष्ट्र के नए नागरिकों का निर्माण—यही है हमारा उद्देश्य!



प्रस्तुत उपन्यास परशुराम का जीवन-गौरव चित्रित करता है।

किशोर-उपन्यास-माला

[सचित्र, सरस तथा स-उद्देश्य]

वीर रस से पूर्ण

श्रीकृष्ण
तात्या टोपे
आचार्य द्रोण
वीर कुंवरसिंह
सम्राट् शिलादित्य
महाराणा राजसिंह
चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य
महाबली छत्रसाल
चन्द्रशेखर आज़ाद
बाजीराव पेशवा
वीर कुणाल
अभिमन्यु
भीष्म
अर्जुन
हल्दी घाटी
राजा सूरजमल
महाबली इन्द्र
खूब लड़ी मर्दानी
गुरु गोविन्द सिंह
चित्तौड़गढ़ की रानी
वीरांगना चेन्नम्मा
गढ़मण्डल की रानी
चक्रवर्ती दशरथ
जय भवानी
दुर्गादास
कर्ण
उदयन

अन्य महापुरुषों की जीवनियों पर आधारित

परशुराम
सम्राट् अशोक
इन्द्र की पराजय
गुरु अंगद देव
गुरु नानक देव
गुदड़ी का लाल : लालबहादुर
मदुरा की मीनाक्षी
रेखाओं का जादूगर
आचार्य चाणक्य
मीरां बावरी
रवि बाबू
सीता
विश्वामित्र
गौतम बुद्ध
स्वामी दयानन्द
देवता हार गए
शान्ति - दूत नेहरू
राम का अश्वमेध
गुरु अमरदास
ऋषि का शाप
आचार्य द्रोण
संत कबीर

शेक्सपियर के नाटकों पर आधारित

तूफान	हैमलेट	निराशा
मैकबेथ	ओथेलो	भूल पर भूल
जूलियस सीजर	राजा लियर	रोमियो जूलियट
जैसा तुम चाहो	राई से पहाड़	वेनिस का सौदागर

शिकार, ज्ञान-विज्ञान एवं 'अरेबियन नाइट्स' पर आधारित

बैंगाचर पक्षी का शिकार	पुत्र	अलीबाबा : चालीस चोर
हवा और सल्लो	बाघ का शिकार	मगरमच्छ का शिकार
ट्रैक का शिकार	हाथी का शिकार	अरब के मसखरे
दरियाबार द्वीप की शहजादी		काने बौने

साहसिक कहानियां

रंग बिरंगी परियां

शान्ति की कहानियां

हमारे बहादुर जवान

सदाचार की कहानियां

हमारे बहादुर हवाबाज

विश्व की साहसिक गाथाएं

देश-देश की परियां भारत आईं

भारत के साहसी वीरों की गाथाएं

शिकार की रोमांचकारी सच्ची गाथाएं

आदमखोर पशुओं की सच्ची गाथाएं

नेफा और लद्दाख के साहसी वीरों की गाथाएं

साहसी समुद्री वीरों की सच्ची गाथाएं

साहस-रोमांच की सच्ची कहानियां

बुद्धिमानों की लोक-कथाएं

राजा-रानी की लोक-कथाएं

शंकर-पार्वती की लोक-कथाएं

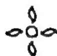
तीज-त्योहार की लोक-कथाएं

भाई-बहन की लोक-कथाएं

कुणाल श्रीवास्तव की अन्य पुस्तकें

- अभिमन्यु
- आचार्य द्रोण
- इन्द्र की पराजय
- बुद्धिमानी की लोक-कथाएं
- तीज-त्योहार की लोक-कथाएं
- शंकर-पार्वती की लोक-कथाएं
- दरियावर द्वीप की शहज़ादी

१




सूर्य आकाश के मध्य में दहकने लगा था। धरती आग की तरह तप रही थी गरम-गरम हवा छू जाती तो लगता जैसे सारा तन झुलस गया हो।

इतनी भीषण गर्मी में भी दो ऋषिपुत्र वन की ओर बढ़े जा रहे थे। आगे-आगे चलते ऋषि ने दाहिने हाथ में लपलपाता हुआ विकराल परशु पकड़ रखा था। मुखमण्डल दमक रहा था—पता नहीं धूप के कारण अथवा उसके अमित तेज के कारण।

पीछे-पीछे चलते ऋषिपुत्र के हाथ में वृक्षों की छाल से बनी मोटी-मोटी मजबूत रस्सियां थीं।

वे अब वन में प्रवेश कर चुके थे।

पहले झाड़-झंखाड़ों के बीच धुंधली-सी पगडंडी थी। धीरे-धीरे वह अलोप हो गई। झुरमुट घने होने लगे। फिर बड़े-बड़े वृक्ष आने लगे। उनसे लिपटी हुई जंगली लताएं। ऊंची-ऊंची घास और जहां-तहां कंटीली झाड़ियों के एक साथ खड़े डरावने कुंज। वन का यह भाग दुर्गम था।

परशुधारी ऋषिपुत्र एक ही गति से चलता रहा। पीछे-पीछे चलते किशोर को छाया मिलते ही जैसे आलस्य लगने लगा। उसने माथे से पसीना पोंछा, फिर सम्भवतः विश्राम के लिए किसी उचित स्थान की खोज में इधर-उधर आंख दौड़ाई। अकस्मात वह चिल्ला पड़ा, "राम…"

आगे-आगे चलता राम ठमक गया। उसने घूमकर पीछे ताका और अचकचाकर साथी के निकट आ खड़ा हुआ। चकित स्वर में उसने पूछा, "क्या हुआ, सुव्रत ? तू चिल्लाया क्यों ?"

सुव्रत कुछ बोल नहीं पाया। भय से कांपता हुआ वह फटी फटी आंखों से सामने कंटीले झुरमुट की ओर ताकता रहा।

राम ने शीघ्रता से परशु सम्हालकर सुव्रत की दृष्टि का अनुसरण किया। निकट ही कहीं सरसराहट-सी हुई। दूसरे ही क्षण अंगार के समान दहकते दो नेत्र दिखाई पड़े। राम उछल कर परे हट गया। सावधान करता हुआ बोला, "सुव्रत तू वृक्ष की ओट ले ले। सिंह आक्रमण करने को तत्पर है…"

सतर्क होकर परशु के दण्ड की मुट्ठियां कसे राम वनराज की आंखों में झांकता आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगा।

नेत्र-युद्ध में पराजित होकर वनराज क्रोध से दहाड़ उठा। लगा जैसे सारा वन-प्रान्त कांप उठा हो। दूसरे ही क्षण वह वेग से राम पर टूट पड़ा।

राम जैसे पहले से ही जानता था। पलक झपकते वह एक ओर सरक गया।

झटके से वृक्ष की उभरी हुई जड़ पर गिरते ही वनराज पीड़ा से कराह उठा। तिलमिलाकर उसने फिर आक्रमण किया। लगा जैसे अबकी उसके विकराल नख राम को चीड़कर रख देंगे।

राम सावधान था। वह एक बार फिर उछलकर बगल हट



गया। इस वार सिंह के धरती पर गिरते ही उसका दाहिना हाथ ऊपर उठा। सूर्य की किरणें परशु के तीक्ष्ण फल पर लप-लपा उठीं। सिंह फिर तड़प कर प्रहार करे, इसके पहले ही राम का परशु गिरा और वनराज का सिर कटकर धरती पर लोटने लगा।

सिंह के विशालकाय धड़ से रक्त का फौवारा छूट पड़ा। वह एक वार उछला, फिर धरती पर गिरकर तड़पता रहा। कुछ देर वाद वह शान्त हो गया।

राम शरीर पर से रक्त की बूंदें पोंछता हुआ सुव्रत के पास आ गया, "बैठ। अब थोड़ा विश्राम करके ही चलेंगे। आ!"

वृक्ष की छाया में पहुंचते ही राम चौंक पड़ा, सामने ही एक किशोर योद्धा खड़ा था—अपरिचित। उसने पूछा, "तू कौन है?"

किशोर दाहिने हाथ की चुटकी से धनुष की प्रत्यंचा थामे अवाक् खड़ा निर्जीव सिंह की ओर देखता रहा।

राम ने मुस्करा कर धरती पर पड़े सिंह की ओर देखा। अरे! यह वाण?

किशोर की ओर देखकर राम हंस पड़ा, "अच्छा, तो यह तेरा आखेट था?"

"नहीं।" किशोर ने गहरी आंखों से राम की ओर ताका, "मैं तो उधर से जा रहा था, सहसा इसकी दहाड़ सुनकर आ गया। हां, तू न मारता तब अवश्य मैं इसका आखेट करता।"

"वह तो अब भी किया है। देख, तेरा वाण सिंह की पस-लियों को फाड़ता हुआ उसके हृदय में धंस गया है।"

"किन्तु तुमने सिंह को काट डाला है। कौन जाने, मेरे वाण से…"

"मैं न काटता तब भी वह मरता ही। तेरा लक्ष्य घातक

है। तू वीर है। जामदग्नेय राम तेरा अभिनन्दन करता है। यह ब्राह्मणपुत्र सुव्रत है। तू अपना परिचय दे, मित्र!"

"मैं सिन्धु के अतिरथी योद्धा दण्ड का पुत्र हूं—वायु।"

"अतिरथी दण्ड का नाम मैंने सुना है, मित्र।" राम ने सिर हिलाया, "पूज्य पिता ने अपने इस योग्य शिष्य के बारे में कई बार बताया है। वह प्रसन्न तो है?"

"पिता अब नहीं रहे, आर्य—?"

"ओऽऽ!" राम खिन्न हो गया। प्रसंग बदलता हुआ बोला, "आ बैठ, मित्र! हां, आर्य नहीं, तू मुझे राम ही कह। आज से तू मेरा मित्र हुआ, वायु।"

"तेरी मैत्री मेरा गौरव है।" वायु पास आकर बैठ गया। "ऐसा ही स्नेह मेरे पिता को भी महर्षि से मिला था, मित्र। उनकी बड़ी इच्छा थी कि स्वयं आश्रम में आकर गुरुदेव के चरणों में मुझे अर्पित करें, किन्तु…"

राम ने इस अप्रिय प्रसंग से बचने के लिए फिर विषय को बदल दिया, "अब तक कहां शिक्षा पा रहा था, मित्र?"

"कहीं नहीं।"

"कहीं नहीं? क्यों"

"रणक्षेत्र में वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए पिता के पराक्रम से आतंकित होकर शत्रुओं ने उनको भुजहीन कर दिया। जब तक एक भी हाथ रहा, वह शत्रुओं को मारते रहे। दोनों हाथ कट जाने के बाद ही वह युद्ध से विरत हुए। स्वस्थ होने के बाद वह देशाटन पर निकल पड़े थे। यात्रा में ही मेरा जन्म हुआ। कुछ ही दिन बाद मां भी चल बसी। मैं पिता के साथ भटकता रहा…"

"बड़ी रोमांचकारी है तेरी जीवन गाथा!" राम ने कहा।

"मुझे कहीं, एक जगह स्थिर होकर रहने का अवसर ही

हीं मिला। इस बीच स्वयं पिता ने ही साधारण-सी शिक्षा । सोचा था, अवसर पाते ही इधर आकर…किन्तु गत वर्ष चानक ही एक दिन के ज्वर में वह मुझे अनाथ कर गए।" गायु ने सिर झुका लिया।

"तू मन दुखी मत कर, मित्र ! पिता अतिरथी की इच्छा पूरी करेंगे।"

"यही आशा लेकर मैं भी आया हूं, मित्र। देखूं, यदि पिता की अभिलाषा पूरी कर सका तो…"

"तुझमें योद्धाओं के सभी गुण हैं, आयु। उनकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।"

आयु धरती में पड़े सिंह की ओर ताकने लगा।

राम ने पूछा, "क्या सोच रहा है ?"

"आं ? हां। सोच रहा था यह सिंह…"

"वह तो मर गया…"सुव्रत हंस पड़ा।

"मैं क्षत्रिय का पुत्र हूं—वह जीवित भी होता तो कौन भय था।" आयु को सुव्रत की हंसी अच्छी नहीं लगी थी।

"राम मुस्कराया। स्नेह से आयु का हाथ दबाता हुआ बोला, "रुष्ट मत हो, मित्र, सुव्रत ने तेरा अपमान करने के लिए नहीं कहा है। हां, तू क्या सोच रहा था ?"

"मैं सोच रहा था, इतना भयानक सिंह…पर तू ऋषिपुत्र होकर…"

सुव्रत फिर जोर से हंस पड़ा,"राम केवल जन्म से ही ऋषि पुत्र है, आयु, किन्तु कर्म से यह क्षत्रिय ही है।"

आयु कुछ समझा नहीं। बुदबुदा कर बोला, "कर्म : क्षत्रिय ?"

"हां। इसका भी एक इतिहास है।"

"इतिहास ? कैसा इतिहास ?"

"वह फिर किसी दिन कहूंगा। आज तो अब···"

आयु का मुंह उतर गया। दबे-दबे स्वर में बोला, "रहने ही दो। सम्भवतः मेरे सुनने योग्य नहीं है—"

"मेरे मित्र को दुखी मत कर, सुव्रत। उसके मन में कौतूहल जगाकर उसकी इच्छा मत ठुकरा। सुना दे। इसी बहाने थोड़ा और विश्राम भी हो जाएगा।"

"तुझे कथाओं में इतनी रुचि है आयु?" सुव्रत हंस पड़ा।

रुचि तो होगी ही। पूर्वजों का इतिहास जो मालूम है।"

"अच्छा, सुन। जरा पहले से कहना पड़ेगा। बहुत प्राचीन कथा है। राम के पितामह महर्षि ऋचीक मुनि तब युवक ही थे। बहुत छोटी वय में ही उन्होंने वेदों का गहन अध्ययन कर लिया था। एक बार कान्यकुब्ज के राजा गाधि वन में मनोरंजन के लिए आए और काफी समय तक उन्हीं के आश्रम में रहे। एक दिन महर्षि ऋचीक की दृष्टि राजा गाधि की पुत्री देवी सत्यवती पर पड़ गई। राजपुत्री अपरूप सुन्दरी थीं। विवाह के योग्य हो चली थीं। महर्षि ने राजा गाधि के पास जाकर उनकी पुत्री के साथ विवाह की इच्छा प्रकट की।"

राजपुत्री से विवाह की इच्छा? आयु चकित रह गया। सुव्रत को रुकते देखकर उसने उत्सुकता से आग्रह किया, तब क्या हुआ? राजा ने सम्भवतः इन्कार कर दिया होगा?"

"क्यों?" सुव्रत ने भौंहें सिकोड़कर पूछा, "तूने ऐसी आशंका क्यों की?"

"नहीं-नहीं।" आयु लज्जित होकर बोला, "मैंने सोचा, सम्भवतः एक ऋषि के साथ राजपुत्री···आश्रम में उन्हें सुख ही क्या मिल सकता था।"

"मूर्ख है तू।" सुव्रत हंस पड़ा, "एकदम अबोध। आज भी तो कितने ही आर्य राजा ऋषियों के साथ अपनी कन्याओं का

विवाह करके गौरव अनुभव करते हैं। राजा गाधि ने भी अस्वीकार नहीं किया। हां, देवीसत्यवती का वीर्यशुल्क अवश्य मांगा था।"

"वीर्यशुल्क ?"

"हां, यह परम्परा है। योग्य वर के तेज और पराक्रम की परीक्षा करने के लिए राजा अपनी कन्या की वीर्यशुल्क निश्चित करते हैं। जो उनका वचन पूरा करे, वह कन्या का वरण करे। राजा गाधि ने देवी सत्यवती का वीर्यशुल्क रखा था—वायुवेग से दौड़ने वाले पाण्डुर रंग के ऐसे अश्व जिनके कान एक ओर से काले रंग के हों।"

"तब ? महर्षि ने वीर्यशुल्क दिया ? इस प्रकार के अश्व तो बहुत दुर्लभ हैं।"

"दुर्लभ न होते तो वीर्यशुल्क में क्यों रखे जाते। महर्षि ऋचीक राजा को आश्वासन देकर अश्वों को प्राप्त करने चल पड़े।"

"कहां ?"

"उत्तर में अलकापुरी की ओर। वहां यक्षों के राजा कुबेर की अश्वशाला में ऐसे अनेक अश्व थे।"

"मिल गए ?"

"हां, देव वरुण की कृपा से महर्षि ऋचीक की इच्छा पूरी हो गई। यक्षों ने मुंह मांगे अश्व दिए।"

आयु की आंखों में प्रशंसा झलक उठी, "महर्षि, का तेज अद्भुत था।"

"था ही।" सुव्रत हंस पड़ा।

"तब क्या हुआ ?"

"होना क्या था ! देवी सत्यवती का वीर्यशुल्क चुकाकर महर्षि ने उनसे विवाह कर लिया।"

"किन्तु यह राम…तुम तो ब्राह्मण राम के क्षत्रिय-आचरण के विषय में कह रहे थे।"

"हां, कथा इसी क्रम में है। महर्षि ऋचीक के विवाह का समाचार सुनकर उनके पिता महर्षि भृगु पुत्र और पुत्रवधू को आशीर्वाद देने आए। पुत्रवधू की सेवा से सन्तुष्ट होकर उन्होंने कहा, 'पुत्र, तू अपनी इच्छा कह। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तेरा क्या हित करूं?' देवी सत्यवती ने अवसर पाकर कहा, 'पूज्य, यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी माता को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दें।' महर्षि भृगु चकित हुए।"

"माता को?" आयु फिर चौंक पड़ा।

"हां, यही आश्चर्य महर्षि भृगु को भी था। पर वह सब कुछ जान गए। देवी सत्यवती अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थीं। कन्या। उनके माता-पिता की बड़ी लालसा थी कि उनके वैभवशाली राज्य के लिए यदि एक उत्तराधिकारी मिल जाता तो…"

"तब क्या हुआ?"

"महर्षि ने पुत्रवधू की निःस्वार्थ भावना से प्रसन्न होकर दो प्रकार के चरु तैयार किए—एक अपनी पुत्रवधू के लिए और दूसरी उनकी माता के लिए। आशीर्वाद देकर बोले, 'तुम दोनों अपने-अपने चरु का सेवन करो, समय पाकर दोनों को गुण के अनुरूप पुत्र प्राप्त होंगे।' किन्तु…"

"किन्तु क्या? क्या हुआ?"

"होना क्या था! स्त्रियों के मन में कपट तो होता ही है।" सुव्रत ने राम की ओर देखा।

"कपट?" आयु को जैसे विश्वास ही नहीं हुआ। होंठों में ही बुदबुदाया "देवी सत्यवती तो साधारण नारी नहीं थीं। फिर ऋषि पत्नी के मन में कपट…"

"देवी सत्यवती के मन में नहीं, आयु, उनकी माता के मन
कपट आ गया। उन्होंने सोचा सम्भवतः महर्षि भृगु ने अपनी
वधू सत्यवती को स्नेहवश अच्छा चरु दिया होगा।"

"तो क्या उन्होंने चरु बदल लिया?"

"हां महर्षि भृगु को पता चला तो वह क्रुद्ध होकर सत्यवती
बोले, 'मैंने तेरे लिए ब्राह्मणोचित चरु तैयार किया था,
क्योंकि अब तू ब्राह्मण ऋषि की पत्नी है। तेरी मां राजरानी
है। उसके लिए मैंने ऐसा चरु दिया था, जिससे उसके गर्भ से
राजपुत्र जन्म लेता। वह वीर पिता गाधि की भांति ही परा-
क्रमी राजा होता। किन्तु तेरी मां ने लोभ में पड़कर सब उलट
दिया। उसका पुत्र क्षत्रिय होकर ब्राह्मणों के कर्म करेगा। तेरा
पुत्र भी जन्म से ब्राह्मण होगा, किन्तु उसके कर्म क्षत्रियों जैसे
होंगे।'"

"अरे..."

"किन्तु देवी सत्यवती के बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने
द्रवित होकर कहा, 'मेरी व्यवस्था व्यर्थ तो नहीं जाएगी।
हां, इतना अवश्य कर सकता हूं कि तेरा पुत्र तो ब्राह्मणकर्मा
ऋषि ही हो, किन्तु उसका पुत्र अर्थात् तेरा पौत्र अवश्य क्षत्रियों
जैसा आचरण करेगा।' देवी सत्यवती ने इतने पर ही सन्तोष
कर लिया। समय पाकर उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया—
वही पुत्र हैं हमारे गुरुदेव—महर्षि जमदग्नि। क्रोध तो मान
उन्हें छू ही नहीं गया है। वय प्राप्त होने पर पूज्य गुरु ने रा
प्रसेनजित की पुत्री देवी रेणुका से विवाह किया और..."

"ओह!" आयु ने कनखी से राम की ओर ताका, "स
गया। पितामह के बनाए चरु के कारण ही महर्षि जमदग्नि
पुत्र राम क्षत्रियों के समान पराक्रमी है।"

"वैसे तो गुरुदेव के पांच पुत्र हैं—आर्य रुमण्वान, सु

वसु, विश्वावसु और तब महराम। किन्तु सबसे पराक्रमी महराम ही है। इसमें अदम्य साहस है।" सुव्रत प्रशंसा भरी दृष्टि से राम की ओर ताकने लगा।

वनराज के निर्जीव शरीर पर सिर टिकाकर विश्राम करता राम धीरे से मुस्करा पड़ा।

आयु के जैसे कुछ याद आ गया। चौंककर उसने पूछा, "और यह राजा गाधि...उनकी सन्तान..."

"उनके भी पुत्र ही हुआ। महाक्रोधी ऋषि विश्वामित्र का नाम तूने अवश्य सुना होगा।"

ऋषि विश्वामित्र! उनकी चर्चा तो सारे आर्यावर्त में है। पिता के साथ यात्रा करते समय कई बार उनका नाम सुना है। उन्होंने ही तो ब्रह्मर्षि वशिष्ठ..."

"हां। पहले ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से उनका झगड़ा चल रहा था, किन्तु अब दोनों एक दूसरे का आदर करते हैं। आर्य विश्वामित्र ने भी तप करके ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त कर लिया है। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों के समान ही उनकी भी पूजा की जाती है। वह जन्म से क्षत्रिय थे, किन्तु अब पूरे ब्राह्मण बन गए हैं।"

"अद्‌भुत!"

राम उकताकर खड़ा हो गया। परशु नापता हुआ बोला, "अब श्रम भी कर चुका। देख, सूर्य पश्चिम की ओर झुक गया। चल, अब फल-फूल और लकड़ियां इकट्ठी करें। और तू, आयु?"

आयु ने उठते हुए कहा, "मैं भी अब तेरे साथ ही आश्रम पर चलूंगा, मित्र!"

सुव्रत भी खड़ा हो गया। वल्कल की बनी रस्सियां उठाकर चलते-चलते उसने एक बार मृत सिंह की ओर देखा,

इसका क्या होगा ?"

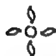
"उसे छोड़ !" सिंह को ठोकर मारकर राम आगे बढ़ गया।

सुव्रत ने जोर से निःश्वास लेकर कहा, "आज यदि तू साथ न होता राम, तो..."

राम घूमकर हंसता हुआ बोला, "तब भी तेरी प्राणरक्षा के लिए आयु पहुंच गया था। तू ही बच जाता। अब निश्चिन्त होकर आ। अभी लौटकर पिता की संध्या-उपासना की भी व्यवस्था करनी है।"

परशु को कन्धे पर रखे राम मतवाले गजराज की भांति झूमता हुआ बढ़ चला।

२




महर्षि जमदग्नि ने एक बार फिर आश्रम से बाहर आकर इधर-उधर ताका। नहीं, कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। थोड़ा आगे बढ़ते ही वन घना हो गया था। ऊंचे-ऊंचे छतनार वृक्षों के कारण सूर्य का प्रकाश जैसे शाखाओं के ऊपर ही अटक कर रह जाता है।

महर्षि जमदग्नि उस ओर धुंधलके में दृष्टि गड़ाकर देखते रहे। झाड़ियों को काटकर काफी थोड़ा मार्ग तैयार कर दिया गया है। आश्रम से नदी के तट तक आते-जाते धरती पर उगी घास कट गई है और उसकी जगह सर्प की बलखाती टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी चमकने लगी है।

रेणुका नहीं दिखाई पड़ी।

निराश होकर महर्षि जमदग्नि फिर आश्रम में वापस चले आए। इतनी देर तक तो वह प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु अब माथे पर चिन्ता की रेखाएं उभर आईं।

रेणुका को हो क्या गया?

ऋषि जमदग्नि व्यग्र होकर इधर-उधर टहलने लगे।
यज्ञशाला में थोड़ी देर पहले ही रेणुका ने यज्ञ-सामग्री
व्यवस्थित करके रख दी थी। ऋषि स्नान कर चुके तो रेणुका
मिट्टी का कलश उठाकर पूजा के लिए नदी से पवित्र जल लाने
चली गई थीं।

रोज का यही नियम है। ऋषि जमदग्नि की पूजा के लिए
नदी का पवित्र जल रेणुका स्वयं लाती हैं। यज्ञशाला में
व्यवस्था करके वह चली जाती हैं। नदी में स्नान करके मिट्टी
का पात्र भरती हैं, फिर गीले वस्त्रों में ही यहां तक आती हैं।
इस बीच वह किसी शिष्य अथवा पुत्रों का भी स्पर्श नहीं
करतीं।

किन्तु इतना विलम्ब तो कभी नहीं हुआ था!

इस समय आश्रम में कोई और था भी नहीं। आश्रम को
असुरक्षित छोड़कर वह स्वयं जाएं भी तो कैसे?

प्रतीक्षा करते-करते ऋषि जमदग्नि अधीर हो उठे। नदी
इतनी दूर भी तो नहीं है!

तब?

महर्षि जमदग्नि ने यज्ञशाला के बाहर गड़े दण्ड की ओर
ताक कर समय का अनुमान लगाया। छाया तीन अंगुल और
पूर्व की ओर सरक चुकी थी।

शंका के कारण महर्षि जमदग्नि का मन कांप उठा। इतनी
देर? कहीं...कहीं...

महर्षि जमदग्नि ने दांतों से कसकर होंठ दबा लिया। म
नहीं माना। क्या पता! विलम्ब होने का और कोई का
भी तो नहीं है। असम्भव ही क्या है। रेणुका असहाय न
ही तो है। हो सकता है मार्ग के किसी झुरमुट में घात लगा
बैठा कोई हिंसक पशु अवसर पाकर उस पर टूट पड़ा हो।

आवेश के कारण ऋषि जमदग्नि की मुखमुद्रा कठोर हो गई। वह लपककर यज्ञशाला में गए। दीवार पर टंगे प्रचण्ड धनुष को उतारकर प्रत्यंचा चढ़ाई। घातक बाणों से भरा तूणीर कन्धे पर लटका लिया और बाहर निकलकर तेज़ी से डग भरते हुए पगडण्डी पर बढ़ चले। आशंका से कांपती दृष्टि चंचल गति से इधर-उधर दौड़ने लगी।

अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। कुछ पग आगे बढ़ते ही आहट पाकर वह ठिठक गए। किसी के चलने से धरती पर पड़े सूखे पत्तों के चरमराने की ध्वनि निकट आती जा रही थी।

महर्षि ने सावधानी के लिए तूणीर से एक बाण निकालकर धनुष पर चढ़ा लिया और सतर्क दृष्टि से इधर-उधर ताकने लगे। आहट सम्भवतः सामने की ओर से आ रही थी। उन्होंने उचक कर झांका। आंखों में प्रसन्नता चमक उठी। आड़ी-टेढ़ी पगडण्डी पर भीगे वस्त्रों में लिपटी जल से भरा कलश उठाए रेणुका चली आ रही थी।

सन्तोष की सांस लेकर महर्षि जमदग्नि ने विष से बुझे हुए बाण को सावधानीपूर्वक फिर कन्धे पर लटकते तूणीर में खोंस दिया। अरक्षित पड़े आश्रम का ध्यान आते ही वह जल्दी-जल्दी लौट पड़े।

कुछ ही क्षणों में देवी रेणुका भी आ पहुंची।

आश्रम में आते ही यज्ञशाला के बाहर खड़े महर्षि को देख कर सहसा वह चौंक पड़ी, "आप…"

रेणुका की आंखों में पल भर के लिये आतंक की एक लहर-सी कौंध गई। उन्होंने एक बार सिर घुमाकर पीछे की ओर देखा—जैसे आंखों ही आंखों में नदी से आश्रम तक फैले पथ की लम्बाई नाप रही हों। जल से भरे कलश

कर इतनी दूर तक आने में मानों वह थक कर शिथिल गई थीं। प्रखर धूप के कारण चेहरा एकदम लाल हो उठा।

"प्रतीक्षा करते-करते मैं तो व्यग्र हो उठा था। चिन्ता के ारे नहीं रहा गया तो..."

"आं?" रेणुका जैसे फिर चौंक पड़ीं। महर्षि की ओर ताका। नेत्रों में जाने कितना भय भर गया था। कांप कर उन्होंने जल्दी से सिर झुका लिया। गीले आंचल से मुंह पोंछती हुई बोलीं, "विलम्ब के लिए क्षमा चाहती हूं, आर्य—

"हं: !" महर्षि जमदग्नि ने हंसकर स्नेह से रेणुका की ओर ताका, "तू तो जरा-जरा सी बात में क्षमा मांगने लगती है। अरे, मैं तो बस ऐसे ही कह रहा हूं। तुझे इतनी देर हो रही थी, मुझे चिन्ता न होती? अच्छा, तू जल ले आ, मैं यज्ञ-शाला में चलता हूं।"

महर्षि जमदग्नि घूमकर यज्ञशाला में चले गए।

□

रह-रहकर महर्षि जमदग्नि का मन उचट जाता। वह खिन्न हो उठे। उपासना के समय तो वह इतने असंयमित कभी भी नहीं हुए। फिर आज क्या हुआ?

रेणुका को तनिक विलम्ब ही तो हो गया था। कुछ हो इस तपती दोपहरी में नदी तक जाकर जल से भरा कल उठाकर लाना, आखिर श्रम तो पड़ता ही है। कहीं छाया बैठकर रेणुका ने दो पल विश्राम कर लिया होगा। फिर इ चिन्ता की क्या बात है। अब तो वह आ ही गई।

किन्तु...

महर्षि जमदग्नि का मन चंचल हो उठता है। अ इतना भयभीत क्यों थी? वह तो ठीक से बातें

नहीं कर पा रही थी। बार-बार रह-रहकर वन में पंछी पग-डंडी की ओर ताकने लगती। क्यों रेणुका कुछ छिपा रही है क्या? रोज ही तो वह नदी तट से संध्या के लिए पवित्र जल लाने जाती है।

मार्ग में कहीं विश्राम कर लिया हो'''तब भी इतना विलम्ब तो नहीं होना चाहिए था।

फिर दृष्टि मिलते ही वह मन में कांप क्यों जाती थी।

बार-बार वन की ओर क्यों ताकती थी?

उसकी इस व्याकुलता के पीछे अवश्य कोई रहस्य है!

क्या?

महर्षि जमदग्नि कुछ समझ नहीं पाए।

उपासना में मन नहीं लगा। जैसे-तैसे संध्या समाप्त करके महर्षि ने अर्घ्य चढ़ाया और बाहर आ गए।

कुटिया के अग्रभाग में अनमनी सी खड़ी रेणुका को जैसे पता ही नहीं चला कि कब महर्षि जमदग्नि आकर निकट खड़े हो गए। वह काष्ठदण्ड के सहारे टिकी अपलक दृष्टि से वन की ओर ताकती हुई जाने क्या सोच रही थीं।

महर्षि के मन में घुमड़ती आशंका और तीखी हो गई। वह व्यग्र होकर रेणुका के सामने आ गए। धीरे से स्पर्श करके बोले, "आर्या!"

"हां आर्य?" रेणुका जैसे सोते-सोते चौंक कर जाग उठी।

"तुम आज बहुत उद्विग्न हो, आर्या?"

"नहीं तो।" कहते-कहते रेणुका का स्वर मानों फिर कहीं खो गया। आंचल से माथे का पसीना पोंछते हुए उन्होंने जोर से निःश्वास छोड़ा, फिर वैसे ही आंचल पकड़े खड़ी रह गईं।

"अरे, तुमने तो अभी वस्त्र भी नहीं बदले?"

उठाकर इतनी दूर तक आने में मानों वह थक कर शिथिल पड़ गई थीं। प्रखर धूप के कारण चेहरा एकदम लाल हो उठा था।

"प्रतीक्षा करते-करते मैं तो व्यग्र हो उठा था। चिन्ता के मारे नहीं रहा गया तो…"

"आं?" रेणुका जैसे फिर चौंक पड़ीं। महर्षि की ओर ताका। नेत्रों में जाने कितना भय भर गया था। कांप कर उन्होंने जल्दी से सिर झुका लिया। गीले आंचल से मुंह पोंछती हुई बोलीं, "विलम्ब के लिए क्षमा चाहती हूं, आर्य—

"हुंः!" महर्षि जमदग्नि ने हंसकर स्नेह से रेणुका की ओर ताका, "तू तो जरा-जरा सी बात में क्षमा मांगने लगती है। अरे, मैं तो बस ऐसे ही कह रहा हूं। तुझे इतनी देर हो रही थी, मुझे चिन्ता न होती? अच्छा, तू जल ले आ, मैं यज्ञ-शाला में चलता हूं।"

महर्षि जमदग्नि घूमकर यज्ञशाला में चले गए।



रह-रहकर महर्षि जमदग्नि का मन उचट जाता। वह खिन्न हो उठे। उपासना के समय तो वह इतने असंयमित कभी भी नहीं हुए। फिर आज क्या हुआ?

रेणुका को तनिक विलम्ब ही तो हो गया था। कुछ भी हो इस तपती दोपहरी में नदी तक जाकर जल से भरा कलश उठाकर लाना, आखिर श्रम तो पड़ता ही है। कहीं छाया में बैठकर रेणुका ने दो पल विश्राम कर लिया होगा। फिर इसमें चिन्ता की क्या बात है। अब तो वह आ ही गई।

किन्तु…

महर्षि जमदग्नि का मन चंचल हो उठता है। आखिर रेणुका [illegible] भयभीत क्यों थी? वह तो ठीक से बातें भी

"अभी बदलती हूं, आर्य ।" रेणुका का स्वर कांप गया । अपराधी की तरह सिर झुकाए वह जल्दी से घूम पड़ीं ।

"आर्या !"

दो पग आगे बढ़ते ही रेणुका ठमक गईं ।

महर्षि जमदग्नि बढ़कर फिर पास आए । संशय भरे स्वर में बोले, "तुम अस्वस्थ तो नहीं हो आर्या ? आज क्या हो गया तुम्हें ?"

रेणुका का चेहरा अकस्मात फक् पड़ गया । खिन्न स्वर में बोलीं, "नहीं तो । मैं स्वस्थ हूं, आर्य !"

"आज तुम्हें जल लेकर लौटने में भी विलम्ब हो गया था ।"

"हां, वह तो·····"रेणुका बीच ही में चुप हो गईं । आंखों में एक विचित्र सी चमक उभरी । जैसे वह कोई सुखद स्वप्न देखने लगी हों । कपोल लाल हो उठे । होठों की कोरें तनिक खिच-सी गईं ।

महर्षि जमदग्नि ने उत्सुकता से रेणुका की पीठ सहलाते हुए पूछा, "क्या हो गया था, आर्ये ? और दिन तो तुम बड़ी जल्दी आ जाती थीं । फिर आज ?"

"आज जल भरने में विलम्ब हो गया, आर्य ।"

"जल भरने में विलम्ब हो गया ?"

"हां । नदी में गन्धर्व चित्ररथ अपनी रानियों के साथ जल-विहार कर रहा था ।"

"गन्धर्व चित्ररथ ?" महर्षि जमदग्नि का हाथ भूलकर रेणुका की पीठ से नीचे गिर पड़ा । चकित होकर उन्होंने पूछा, "तुम उसे जानती हो ?"

"नहीं, आर्य उसके एक दास से पूछकर ही उसका परिचय जान पाई । मैंने सोचा, वह जल विहार करके निकले तब मैं

पवित्र जल लेकर आऊं। इसीलिए एक वृक्ष की छाया में खड़ी होकर प्रतीक्षा करने लगी !"

लगा जैसे बताते-बताते रेणुका कहीं बहुत दूर चली गई हों। दीर्घ निःश्वास छोड़कर खोए-खोए स्वर में बोलीं, "अद्भुत था वह गन्धर्व, आर्य ! मदमत्त गजराज के समान रूपसी रानियों के साथ जल-विहार करते हुए उसने नदी के जल को मथ डाला। मैं तो विस्मय से ताकती ही रह गई। कितनी देर तक खड़ी-खड़ी उसकी जल क्रीड़ा देखती रही, मुझे कुछ याद ही नहीं रह गया था !

"रेणुका !" सहसा मानों मेघ गरज उठे हों।

सहम कर रेणुका ने महर्षि जमदग्नि की ओर ताका और भय से कांपती हुई पीछे सरक गईं।

"ऋषि-पत्नी होकर भी तेरे मन से राजसी प्रवृत्ति नहीं गई। संध्या उपासना की सुधि भी भूलकर तू गन्धर्व का जल-विहार देखती रही, पापिनी !"

"आर्य !" रेणुका कातर स्वर में चिल्ला पड़ीं। महर्षि जमदग्नि के चरणों की ओर झुकती हुई दीन स्वर में बोलीं, "क्षमा करें, आर्य।"

महर्षि जमदग्नि वेग से पीछे हट गए। घृणा से होंठ सिकोड़ कर बोले, "अब तू मेरा स्पर्श करने योग्य नहीं रही कुलटा ! मैं तुझे दण्ड दूंगा।"

"आर्य।" रेणुका धरती पर गिरकर बिलखने लगी, "मुझे क्षमा करें, आर्य ! मैं···मैं···"

महर्षि जमदग्नि ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। उन्होंने एक बार लाल-लाल दहकती आंखों से रेणुका की ओर देखा। फुफकार कर बोले, "तू भार्गवों का कलंक है। ऐसी कलुषित नारी को जीने का अधिकार नहीं है।"

"आर्य ऽऽऽ!" रेणुका जोर से कांपी, फिर भय से अचेत होकर धरती पर गिर पड़ी।

महर्षि जमदग्नि क्रोध से पैर पटकते हुए यज्ञशाला में चले गए।

००

३







बाड़ हटाकर भीतर घुसते ही आयु स्तब्ध रह गया। आंखों पर सहसा विश्वास ही नहीं हुआ। सीधा उस ओर देखते रहने का भी साहस नहीं हो रहा। डरते-डरते उसने कनखी से यज्ञ-शाला की ओर ताका। बाहर ही खड़े महर्षि जमदग्नि के नेत्रों से जैसे ज्वाला निकल रही हो।

इतने दिन इस आश्रम पर आए हो गए, किन्तु महर्षि का ऐसा प्रचण्ड रूप आयु ने आज तक कभी नहीं देखा था। सहम कर वह जहां का तहां खड़ा रह गया।

महर्षि के ठीक सामने ही राम के अग्रज आर्य रूमण्वान, आर्य सुषेण और आर्य वसु और विश्वावसु खड़े थे। महर्षि के नेत्रों का क्रोध सम्भवतः वे भी नहीं सह पा रहे थे। उनके सिर झुके हुए थे। भय से थरथराते शरीर का कम्पन यहां से भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

आखिर हो क्या गया?

आयु कुछ समझ नहीं पाया।

प्रातः तो महर्षि प्रसन्न थे। नित्य की भांति आज भी उन्होंने बड़े स्नेह से आश्रमवासियों को उपदेश दिया था। शस्त्रों का अभ्यास कराया था। उसके बाद सभी आश्रमवासी वन में फल-फूल और सूखी लकड़ियां लाने चले गए थे। आर्य रुमण्वान, सुषेण वसु और विश्वावसु औषधि के लिए वनस्पतियां खोजने जा रहे थे। महर्षि का आदेश पाकर आयु भी उन्हीं के साथ चला गया था।

आयु ने उचककर आहट ली—लगता है, अभी तक और कोई नहीं लौटा है।

वे भी तो अभी-अभी चले ही आ रहे हैं। देर ही कितनी हुई है! आश्रम के बाहर कुलाचें भरते मृगशावक को देखकर आर्य रुमण्वान ने कहा था, "इसका पैर अभी बिल्कुल ठीक नहीं हुआ है, दौड़-दौड़कर फिर न तोड़ बैठे। उसे पकड़कर अब बाड़े में कर दे, आयु!"

आयु मृगशावक को पकड़ने लगा था और आर्य रुमण्वान अपने तीनों अनुजों के साथ भीतर चले आए थे। लताओं से बुनी जाली में बंधी औषधियां अभी तक उनके कन्धों से लटक रही थीं। लगता है पहुंचते ही महर्षि के सामने पड़ गए। पर अकस्मात उनसे ऐसा क्या अपराध हो गया होगा कि…

सुव्रत तो कहता था, "महर्षि कभी क्रोध नहीं करते…"

"रुमण्वान!"

महर्षि का घन-गम्भीर स्वर सुनते ही आयु की सांस अटक गई। वह सरककर फूलों से लदी लता के पीछे छिप गया, पर रह नहीं सका, पत्तों के बीच से वह यज्ञशाला की ओर झांकने लगा।

आर्य रुमण्वान बोले नहीं। महर्षि का स्वर सुनकर वह एक बार कांपे। क्षण भर के लिए उनके आविष्ट होने का आभास

मिला, और वह फिर मूर्ति की भांति निश्चल हो गए।

"रुमण्वान!" महर्षि ने उसी तरह घरघराते हुए स्वर में कहा, "तुम लोग स्तब्ध क्यों हो गए हो? तुम्हारे शरीर में प्राण नहीं हैं क्या?"

"पूज्य!" आर्य रुमण्वान पल भर थमकर जैसे साहस बटोरते रहे, फिर बोले, "हमसे अनजान में कोई अपराध तो नहीं हो गया, तात?"

"नहीं। अपराधिनी तुम्हारी मां है।"

गुरुपत्नी ने अपराध किया है? आयु चकित हो गया।

आशंका से मुक्ति मिलते ही आर्य रुमण्वान का जकड़ा हुआ शरीर जैसे कुछ ढीला पड़ गया।

आर्य सुषेण, वसु और विश्वावसु भी अपने स्थान पर खड़े-खड़े ही हिल उठे। अग्रज के साथ वे भी पिता के संकेत पर कुटिया के अग्रभाग में धरती पर अचेत पड़ी मां की ओर ताकने लगे।

रुमण्वान ने आकुल स्वर में याचना की, "पिता मां को क्षमा..."

"नहीं।" महर्षि जमदग्नि गरज उठे, "मैं उसे दण्ड दूंगा।"

दण्ड? आयु का खून जम गया। महर्षि जमदग्नि अपनी पत्नी को दण्ड देंगे? भगवती रेणुका को?

कलंकिनी रेणुका भार्गवों की मर्यादा से विचलित हो गई है। उसने भगवान भृगु और महर्षि ऋचीक जैसे तपस्वियों की व्यवस्था भंग की है। उसने जीने का अधिकार खो दिया है। मैंने उसके लिए प्राणदण्ड की व्यवस्था की है।"

"आर्य!" आर्य रुमण्वान फटी-फटी आंखों से पिता की ओर ताकते ही रह गए।

"तात !" आर्य सुषेण सिहर कर पीछे हट गए।

"पिता !" वसु और विश्वावसु आकुल होकर अचेत पड़ी मां की ओर लपके।

"रुको !" महर्षि के एक आदेश पर जैसे वसु और विश्वावसु के पांव तले की धरती में जहां के तहां चिपक गए।

"रुमण्वान !" महर्षि पल भर पुत्र की आंखों में आंखें डाल कर देखते रहे, फिर सहसा विचित्र स्वर में बोल पड़े, "मेरा आदेश है, तुम जाकर अपनी माता का वध कर दो।"

आयु सिर थामकर धम् से धरती पर बैठ गया।

"रुमण्वान !" आदेश की अवहेलना होते देखकर महर्षि की आंखें भक् से जल उठीं।

"क्षमा करें, पिता !" रुमण्वान कांपकर बोले।

"कायर !" महर्षि ने क्रोध से तिलमिला कर सुषेण की ओर देखा, "पुत्र, तू मेरे आदेश की पूर्ति कर। इसी क्षण।"

"नहीं तात······नहीं···" आर्य सुषेण दोनों हाथों से मुंह छिपाकर कई पग पीछे हट गए।"

"वसु।"

आर्य वसु काठ की तरह स्तब्ध खड़े रहे।

"और तू, विश्वावसु ?" महर्षि ने क्रोध से गरजकर पूछा, "तू क्या कहता है ?"

आर्य विश्वावसु ने सम्भवतः सुना ही नहीं। वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े।

"मैं तुम चारों का त्याग करता हूं। तुम्हें इस आश्रम में रहने का अधिकार नहीं है ! जल्दी से जल्दी अपनी अपवित्र छाया यहां से दूर कर लो।"

महर्षि जमदग्नि उद्विग्न होकर यज्ञशाला के भीतर चले गए।

आयु त्रस्त बैठा धरती पर अचेत पड़ी गुरुपत्नी रेणुका की ओर ताकता रहा। राजा प्रसेनजित की सुकुमार पुत्री महर्षि की पत्नी बनकर, सारे राजसुखों से वंचित होकर, इस प्रकार वन के आश्रम में जीवन व्यतीत करेगी—यह किसने सोचा होगा ! और आज भगवती रेणुका को इस प्रकार दण्डित होते देखकर ही कौन विश्वास करेगा कि इन्हीं की सुकुमारता पर द्रवित होकर महर्षि जमदग्नि ने एक दिन आश्रमों के लिए एक नई व्यवस्था दी थी···

पिता कहते थे, "तुझे मैं अनायास ही थोड़े महर्षि जमदग्नि की सेवा में भेजना चाहता हूं आयु। मेरा एक ही स्वप्न है—तू महान धनुर्धर बने। मुझे भार्गव जमदग्नि की कृपा प्राप्त है, मेरी प्रार्थना वह टालेंगे नहीं। मेरा स्वप्न पूरा होगा ही। उनकी कृपा का प्रसाद भर मिल जाए, बस। उनका अपरिमित तेज और पराक्रम तू जानता है···"

यात्रा के समय पिता ने जाने कितनी बार वह कथा सुनाई है—

महर्षि जमदग्नि धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहे थे। विशाल धनुष पर बाण चढ़ाकर कान तक प्रत्यंचा खींचकर छोड़ते ही तीर आकाश में उड़ जाता। जब तक वह फिर मुड़कर धरती पर गिरे-गिरे, तब तक महर्षि सैकड़ों बाण और छोड़ चुके होते।

महर्षि के कौशल पर मुग्ध देवी रेणुका भाग-भागकर बाण बटोरती और महर्षि के खाली होते तूणीर में भरती जा रही थीं।

सहसा महर्षि के हाथ रुक गए। कन्धे पर लटकते तूणीर में एक भी बाण नहीं शेष बचा था। खिन्न होकर उन्होंने देवी की ओर ताका, फिर मुस्कराते हुए धनुष की प्रत्यंचा उतारकर लपेटने लगे।

थोड़ी देर में पसीने से लथपथ देवी रेणुका बाण लेकर थकी-थकी-सी लौटीं तो चौंक पड़ीं, "क्या हुआ आर्य, वत्स ?"

देवी रेणुका के स्वर में छिपा सन्तोष महर्षि से नहीं छिप सका। हंसकर बोले, "थक गई थीं तो तुमने पहले क्यों नहीं बताया, शुभे ? मैं तो अभ्यास में इतना खो गया कि चेत ही नहीं रहा। आओ, अब आश्रम में चलते हैं।"

आकाश में तपते सूर्य के प्रखर तेज की ओर देखकर देवी रेणुका वृक्ष की छाया में बैठकर पांवों का तलुआ सहलाने लगीं।

उनके तलुओं में पड़े छालों की ओर देखते ही चौंक पड़े, "यह क्या हुआ, रेणुका ? इतने छाले ?"

देवी रेणुका ने लज्जित स्वर में कहा, "क्षमा करें, आर्य ! अभी तक अभ्यास नहीं कर पाई हूं।"

"अभ्यास ? कैसा अभ्यास ?"

"धरती तप रही है, आर्य। उसी की जलन से···"

"हूं।" महर्षि जमदग्नि ने क्रुद्ध होकर आकाश की ओर देखा। गम्भीर स्वर में बोले, "तुम आश्रम में चलकर औषधि लगाओ, शुभे, मैं कल इसका भी उपाय करूंगा। उसके बाद सूर्य का ताप तुम्हें कष्ट नहीं देगा।"

देवी रेणुका विस्मित हो गईं, "कैसे, आर्य ?"

"मैं···मैं···" महर्षि जमदग्नि भौंहें सिकोड़कर सोचने लगे। सहसा ही उन्हें उपाय सूझ गया। प्रसन्न होकर बोले, "मैं तुम्हारे पथ पर बाणों से पूरी छत बना दूंगा। सूर्य की किरणें धरती तक आने ही नहीं पाएंगी।"

"किन्तु···"

"किन्तु क्या ?" महर्षि उत्तेजित हो गए, तुम्हें मेरे कौशल पर विश्वास नहीं हो रहा है ?"

"आप सब कुछ करने में समर्थ हैं, आर्य।"

"तब ?"

"इससे तो सूर्य की मर्यादा नष्ट होगी, देव।"

"किन्तु सूर्य ने तुम्हें पीड़ा जो पहुंचाई है…"

"मैं उसके आगे बहुत तुच्छ हूं, आर्य। यदि ऋषि-मुनि ही देवों द्वारा स्थापित परम्पराएं तोड़ने लगेंगे तो…"

"तुम महान हो, रेणुका! यशस्विनी होओ।" महर्षि जमदग्नि प्रसन्न हो उठे, "अच्छा मैं कोई और उपाय सोचूंगा। आओ।"

दूसरे दिन महर्षि जमदग्नि ने देवी रेणुका को मृगचर्म से बनी पदुकाएं और बांस की खपच्चियों और कुश से बना एक छत्र भेंट किया तो वह चकित रह गईं। विस्मय के साथ बोलीं, तपस्वियों के लिए तो ये सुख वर्जित हैं, आर्य!"

"वर्जित थे, किन्तु मैं उन्हें आवश्यक समझता हूं। इससे शक्ति और समय का ह्रास होने से बचेगा आज से मैं सारे आश्रमवासियों के लिए पादुका और छत्र धारण करने की व्यवस्था करता हूं। इसका यश तुम्हें मिले, देवि!"

उन्हीं देवी रेणुका के लिए आज महर्षि ने प्राणदण्ड की व्यवस्था की है और देवी रेणुका प्राणभय से त्रस्त धरती पर अचेत लोट रही हैं। उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। कोई नहीं ?"

आयु का माथा ठनकने लगा।

□

पता नहीं कितनी देर बीत गई।

"अग्रज!"

आयु उछल कर खड़ा हो गया। अरे राम ? हां, राम ही तो है!

अग्निशाला के सामने पत्थर की प्रतिमा-से स्तब्ध खड़े वसु की कलाई थामकर राम पल भर चकित-सा इधर-उधर ताकता रहा। लगा जैसे कुछ समझ न पाने के कारण वह खिन्न हो गया हो। रूखे स्वर में बोला, "अग्रज, आप लोग बोल क्यों नहीं रहे हैं ? पूज्य पिता कहां हैं ? अग्रज विश्वावसु अचेत क्यों हैं ? आश्रम में इतनी स्तब्धता क्यों छाई हुई है ? मैं···मैं···" राम आवेश में हांफता हुआ आर्य रुमण्वान के आगे जा खड़ा हुआ।

आयु का मन अकुला उठा। अभी-अभी उसने जो कुछ देखा-सुना है···क्या पता, महर्षि जमदग्नि सम्भवतः राम को भी वही आदेश दें और···और···

कुछ होने के पहले ही राम को इस काण्ड के बारे में बता देना चाहिए। कहीं महर्षि की दृष्टि इस पर पड़ गई तो···

आयु लपककर लता की ओट से बाहर आ गया, पर···

"राम !"

आयु दांत पीसकर रह गया। अर्थात् महर्षि ने राम की आहट पा ली थी। अब ?

"तात !" राम स्वयं घूमकर महर्षि के सामने जा खड़ा हुआ। संशय भरे स्वर में बोला, "मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं, आर्य। आप भी खिन्न दिखाई पड़ रहे हैं। अग्रज भी कुछ नहीं बोल रहे हैं। आर्य विश्वावसु तो अचेत ही हो गए हैं और मां···"

खोजते-खोजते राम की दृष्टि कुटिया के अग्रभाग में बेसुध पड़ी देवी रेणुका की देह पर टिक गई। आशंका भरे स्वर में उसने पूछा, "मां ?···आर्य, मां को क्या हुआ ?" वह दौड़कर रेणुका के निकट जा पहुंचा।

"उसके विषय में बात मतकर, राम !" महर्षि

एक अक्षर जैसे विष से डूबा हुआ था। घृणा से होंठ
ोड़कर उन्होंने मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

"राम ठिठक गया। उसने अचकचाकर पूछा, "मां से कोई
ट हो गई क्या, तात?"

"त्रुटि?" महर्षि जमदग्नि हुंकार उठे, "इसे त्रुटि कहते
? मैं यज्ञशाला में बैठकर प्रतीक्षा करते-करते चिन्तित हो
या और यह नदी तट पर खड़ी हुई गन्धर्वों की पत्नियों के
ाथ जल विहार करता देखती रही। इसे संध्या-उपासना की
भी सुधि नहीं आई।

"यह क्या भार्गवों की भगवती को शोभा देता है, राम?"

"नहीं, आर्य!" राम विकल हो उठा। बुझे मन से बोला,
"मां ने अपराध किया है।"

"अपराध नहीं महापाप किया है। ऋषि पत्नी होकर
एकान्त में पर पुरुष को जल विहार करते देखना, थूः। तू क्या
सोचता है, राम?"

"पिता की इच्छा ही मेरा विचार है, तात।"

"तो मैं आदेश देता हूं, तू इसका वध कर।"

राम चौंक पड़ा।

लता के पास खड़े आयु की मुट्ठियां कस उठीं। बस, एक
पल और...और महर्षि जमदग्नि कोप कर राम को भी आश्रम
छोड़कर चले जाने की आज्ञा दे देंगे।

आयु की आंखों में आंसू आ गए। प्रथम परिचय में ही
राम ने उसे मित्र बना लिया था। और इतने दिन तक सा
रहते-रहते अब तो लगता है, मानों वे दोनों केवल शरीर से दो
हैं, किन्तु उनका मन एक ही है। यदि महर्षि ने राम को भ
आश्रम से निकाल दिया तो?

तब वह भी आश्रम से चला जाएगा। अतिरथी पिता

गए ही। उनके साथ ही उनका स्वप्न भी जाए। आयु श्रेष्ठ धनुर्धर न बनेगा तो न सही, किन्तु राम के विना इस आश्रम में वह एक पल भी नहीं टिक सकता। मित्र के साथ ही वह भी चला जाएगा।

सहसा महर्षि जमदग्नि क्रोध से गरज पड़े, "क्या सोच रहा है, राम ? इस तुच्छ स्त्री का मन कलुषित हो गया है। जब तक यह जीवित है, भार्गवों के शुभ्र मस्तक पर कलंक के टीके के समान है। मेरी आज्ञा है, तू इसका वध कर दे।"

आयु के मुंह से चीख निकलते-निकलते बच गई। वह आंखें फाड़े राम के दहकते हुए नेत्रों की ओर ताकने लगा।

राम पल भर खड़ा जैसे परशु तौलता रहा, फिर लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ कुटिया के अग्रभाग की ओर बढ़ा, जहां देवी रेणुका बेसुध पड़ी थीं।

"राम !" इतनी देर से हतप्रभ से खड़े आर्य रुमण्वान सहसा चीख पड़े।

"राम, तू मां की हत्या करेगा ?" आर्य सुषेण को मानों अपनी दृष्टि पर विश्वास ही न हो रहा हो।

राम ने देवी रेणुका के पास ठमककर विचित्र-सी दृष्टि से पीछे देखा। उसकी आंखों में पता नहीं कैसी चमक कौंध रही थी। लगा जैसे वह विक्षिप्त हो उठा हो। मानों बड़ी दूर से उसने उत्तर दिया, "पिता को—आश्रम के कुलपति को··· ऋचीक पुत्र जमदग्नि भार्गव को। यही व्यवस्था है, अग्रज। वह कह रहे हैं, मां कुल के लिए कलंक हैं ! यही सत्य होगा !"

"राम !"

वसु भय से कांपने लगे।

राम ने एक बार फिर कौंधती-सी दृष्टि आर्य वसु की ओर डाली और दूसरे ही क्षण उसका लपलपाता हुआ परशु सिर से

भी ऊपर तक गया ।

: जैसे विजली चमक उठी हो···बस, एक ग्राघात ग्रौर···ग्रौर ···खून की फुहार···तड़पता हुग्रा रुण्ड···

"राम !" सहसा महर्षि जमदग्नि चीख पड़े !

राम का उठा हुग्रा हाथ ऊपर ही टंगा रह गया । उसने घूमकर महर्षि जमदग्नि की ग्रोर ताकते हुए रूक्षस्वर में कहा, "ग्राज्ञा दीजिए, तात ।"

"रहने दे, राम रहने दे ।" महर्षि जमदग्नि ने ग्राकुल स्वर में कहा ग्रौर लपककर राम को छाती से लगा लिया, तू महान है, पुत्र ! तेरी पितृभक्ति से मैं प्रसन्न हूं । बोल, तू क्या चाहता है ?

"मां को क्षमा कर दीजिए, तात, त्रुटि तो मानवमात्र का स्वभाव है । फिर मां तो नारी ठहरी—ग्रबला !"

"क्रोध में ग्राकर मैं ग्रसंयमित हो उठा था, राम, मैंने रेणुका को क्षमा कर दिया है । तू ग्रपनी कोई ग्रौर इच्छा बता ।"

"तो इतनी ग्रनुकम्पा हो, पूज्य कि मां इस विषय में कुछ भी न जानें कि···कि राम उन्हें प्राणदण्ड दे रहा था···"

"मैं वचन देता हूं, वत्स । रेणुका को इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं ज्ञात होगा । सारा ग्राश्रम मेरे इस वचन का पालन करेगा । तू धर्म जानता है । कुछ ग्रौर मांग, वत्स !"

"तात"···राम कुछ सोचता-सा चुप हो गया ।

"कह पुत्र, निःशंक होकर कह । मैं तुझ पर प्रसन्न हूं ।"

"मेरे चारों ग्रग्रज···"

"उन चारों ने मेरी ग्राज्ञा का उल्लंघन किया है । मैंने उन्हें ग्राश्रम से निष्कासन का दण्ड दिया है !"

"तो उन्हें फिर ग्रापका स्नेह प्राप्त हो, तात ।" राम ने

बीच ही में महर्षि को टोक दिया, "जननी की ममता के कारण ही उनसे पिता के प्रति यह अपराध हुआ है। उन्हें भी क्षमा करें पूज्य, यही मेरी इच्छा है।"

राम के वाक्चातुर्य पर आयु मुग्ध हो गया।

महर्षि जमदग्नि स्नेह से हंस पड़े, तेरी यह इच्छा भी पूरी हो। रुमण्वान, सुषेण, वसु और विश्वावसु, अपनी भगवती अम्बा का उपचार करो! और, राम···वत्स, तू कोई और इच्छा व्यक्त कर। तू पितृभक्त है, स्वार्थहीन है। मर्यादा का पालन करने वाला है। साहसी है—बोल तू क्या चाहता है? कुछ अपने लिए मांग, राम।"

"तात की यही इच्छा है तो मुझे पराक्रमी होने का आशी
र्वाद दें। मुझे धनुर्विद्या का ज्ञान दें।"

"मैं तेरी इच्छा जानता था, वत्स। पितामह की वाण
व्यर्थ नहीं जाएगी। तेरे हर आचरण से क्षत्रियत्व झलकता है
मैं तुझे योद्धा बनाऊंगा। प्रचण्ड योद्धा। कल से ही तुझे ध
र्विद्या का अभ्यास करवा दूंगा। तू अजेय बन। प्रसन्न हो।

ाम ने प्रत्यंचा उतारकर धनुष वृक्ष से टिका दिया।
े बंधन खोलकर तूणीर भी उतार लिया। कुंज की छाया
ता हुआ बोला, "कल वह सूखा हुआ वृक्ष देखा था, न,
मैं उसे पूरा ही अपने बाणों से काटकर गिरा दूंगा।"
"बाणों से?"
"वैसे ज्ञान का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। फिर लक-
यां काटने में थोड़ा सा शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है।
...भी वृक्ष काटने के बहाने अभ्यास भी करेंगे। तू बैठ।"
आयु भी निकट ही बैठ गया। धनुष पर हाथ फेरता हुआ
ोला, "आज मेरा भी कोई लक्ष्य नहीं चूका न मित्र।"
"तू बड़ी तीव्र गति से सीख रहा है। स्वर्ग में बैठे तेरे
प्रतिथि पिता अवश्य प्रसन्न हो रहे होंगे। उनका स्वप्न पूरा हो
रहा है। तू विकट धनुर्धर बनेगा।"
पिता का प्रसंग आते ही आयु जैसे चौंक पड़ा। लगा,
मानों कोई भूली हुई बात याद आ गई हो। वह अचकचाकर
राम की ओर ताकने लगा।
राम बहुत दिनों से देख रहा है। कभी-कभी बात करते-
करते आयु अचानक ही चौंककर उसकी ओर ताकने लगता है।
पता नहीं कैसी दृष्टि होती है। कुछ विचित्र-सी अनचीन्ही
चमक। लगता है जैसे वह राम को पहचान ही न रहा हो।
आज फिर आयु वैसा ही हो गया। इसके होंठ थरथराने
लगे। पता नहीं क्या कहना चाहता है, पर कह नहीं पाता।
राम हंस पड़ा, "क्या सोचने लगा आयु?"
"आंऽऽऽ?" आयु चौंक पड़ा जल्दी से सम्हलता हुआ बोला
"कुछ नहीं। बस, ऐसे ही। चलें क्या?"
राम जान गया। आयु संकोचवश ही नहीं बता रहा है
उसने खिन्न होकर कहा, "तू मित्र से भी छिपाव रखता है, अ

बताता क्यों नहीं। जब-तब तू सहसा ही पता नहीं क्यों अन्यमनस्क हो उठता है। क्या कारण है? बता।"

आयु होंठ काटकर दूसरी ओर ताकने लगा।

"यदि न बताना चाहता हो तो रहने ही दे। मैं तेरा भेद नहीं लेना चाहता…"

"नहीं-नहीं। भेद कैसा…"

"तब बताता क्यों नहीं। मित्र इसीलिए तो होते हैं कि उनसे कहकर मन का बोझ हलका कर लिया जाए।"

"नहीं, बोझ भी नहीं पर…"

"पर क्या? बता।"

"आयु पल भर चुप रहकर न जाने किस धर्म संकट में पड़ा रहा। सिर झटक कर बोला, "रहने ही दे, मित्र तू रुष्ट हो जाएगा।"

"आयु!" राम का स्वर रूखा हो गया, अब मैं सचमुच रुष्ट हो जाऊंगा। मित्र पर तेरा यही विश्वास है?"

"नहीं, मित्र, पर…अच्छा, पूछ ही लूं। रुष्ट मत होना, मित्र। बस कौतूहल भर है। वैसे तो मैं तुझे जानता हूं।"

"अब कह भी।"

"हां, अच्छा…मैं उस दिन की बात कर रहा हूं…वह… गुरुदेव ने तुझे माता का वध करने का आदेश दिया था न!"

राम उचक कर बैठ गया, "तू कैसे जानता है, आयु?

"मैं…मैं…मुझे क्षमाकर, मित्र। मैं आर्य रुमण्वान आदि के साथ ही लौटा था, किन्तु गुरुदेव का क्रोध न सहपाने के कारण लता की ओट में ही खड़ा रह गया था। मैं निरपराध हू मित्र।"

"ओह!" एक ठण्डी सांस लेकर राम फिर पसर गया।

आयु चुप होकर दूसरी ओर ताकने लगा।

"तब? क्या पूछ रहा है?"

राम ने प्रत्यंचा उतारकर धनुष वृक्ष से टिका दिया।
से बंधन खोलकर तूणीर भी उतार लिया। कुंज की छाया
बैठता हुआ बोला, "कल वह सूखा हुआ वृक्ष देखा था, न,
ज मैं उसे पूरा ही अपने वाणों से काटकर गिरा दूंगा।"

"वाणों से ?"

"वैसे ज्ञान का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। फिर लक-
ड़ियां काटने में थोड़ा सा शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है।
तव···भी वृक्ष काटने के वहाने अभ्यास भी करेंगे। तू बैठ।"

आयु भी निकट ही बैठ गया। धनुष पर हाथ फेरता हुआ
बोला, "आज मेरा भी कोई लक्ष्य नहीं चूका न मित्र।"

"तू बड़ी तीव्र गति से सीख रहा है। स्वर्ग में बैठे तेरे
अतिथि पिता अवश्य प्रसन्न हो रहे होंगे। उनका स्वप्न पूरा हो
रहा है। तू विकट धनुर्धर बनेगा।"

पिता का प्रसंग आते ही आयु जैसे चौंक पड़ा। लगा,
मानों कोई भूली हुई बात याद आ गई हो। वह अचकचाकर
राम की ओर ताकने लगा।

राम बहुत दिनों से देख रहा है। कभी-कभी बात करते-
करते आयु अचानक ही चौंककर उसकी ओर ताकने लगता है।
पता नहीं कैसी दृष्टि होती है। कुछ विचित्र-सी अनचीन्ही
चमक। लगता है जैसे वह राम को पहचान ही न रहा हो।

आज फिर आयु वैसा ही हो गया। इसके होंठ थरथरा
लगे। पता नहीं क्या कहना चाहता है, पर कह नहीं पाता।

राम हंस पड़ा, "क्या सोचने लगा आयु ?"

"आंऽऽ?" आयु चौंक पड़ा जल्दी से सम्हलता हुआ बोल
"कुछ नहीं। बस, ऐसे ही। चलें क्या ?"

राम जान गया। आयु संकोचवश ही नहीं बता रहा
उसने खिन्न होकर कहा, "तू मित्र से भी छिपाव रखता है,

बताता क्यों नहीं। जब-तब तू रहता हो पता नहीं क्यों अन्यमनस्क हो उठता है। क्या कारण है? बता।"

आयु होंठ काटकर दूसरी ओर ताकने लगा।

"यदि न बताना चाहता हो तो रहने हो दे। मैं तेरा भेद नहीं लेना चाहता···"

"नहीं-नहीं। भेद कैसा···"

"तब बताता क्यों नहीं। मित्र इसीलिए तो होते हैं कि उनसे कहकर मन का बोझ हलका कर लिया जाए।"

"नहीं, बोझ भी नहीं पर···"

"पर क्या? बता।"

"आयु पल भर चुप रहकर न जाने किस धर्म संकट में पड़ा रहा। सिर झटक कर बोला, "रहने ही दे, मित्र तू रुष्ट हो जाएगा।"

"आयु!" राम का स्वर रूखा हो गया, अब मैं सचमुच रुष्ट हो जाऊंगा। मित्र पर तेरा यही विश्वास है?"

"नहीं, मित्र, पर···अच्छा, पूछ ही लूं। रुष्ट मत होना, मित्र। बस कौतूहल भर है। वैसे तो मैं तुझे जानता हूं।"

"अब कह भी।"

"हां, अच्छा···मैं उस दिन की बात कर रहा हूं···यह··· गुरुदेव ने तुझे माता का वध करने का आदेश दिया था न!"

राम उचक कर बैठ गया, "तू कैसे जानता है, आयु?

"मैं···मैं···मुझे क्षमाकर, मित्र। मैं आर्य रुमण्वान आदि के साथ ही लौटा था, किन्तु गुरुदेव का क्रोध न सहपाने के कारण लता की ओट में ही खड़ा रह गया था। मैं निरपराध हूं मित्र।"

"ओह!" एक ठण्डी सांस लेकर राम फिर पसर गया।

आयु चुप होकर दूसरी ओर ताकने लगा।

"तब? क्या पूछ रहा है?"

"ग्रां ? न हो तो, जाने दे यह प्रसंग !"

"कह, तू कह ग्रायु ।"

पल भर चुप रहकर ग्रायु बोला, "मैं तेरी ही बात सोच रहा था, मित्र। पता नहीं क्यों मन में संशय उठ ग्राया।"

"क्या ?"

"तू माता का वध करने जा रहा था···।"

"नहीं। वह पिता की इच्छा थी। मैं तो उनके ग्रादेश को पूर्ति भर कर रहा था।"

"वही सही।"

"तब ?"

"तेरे मन में जननी के लिए मोह नहीं जागा, मित्र ? उनका ग्रपराध ऐसा भयानक तो नहीं था।"

"यदि ग्रपराध भयानक होता, तब तो पिता का ग्रादेश न होने पर भी मैं माता का वध कर डालता।"

"ग्रर्थात् तू भी मानता है कि ग्रपराध उतना भारी नहीं था ?"

"नहीं था।"

"तब भी तू उनका वध करने जा रहा था ?"

"पिता की ग्राज्ञा मानकर।"

"किन्तु तू जानता तो था राम कि भगवती क्षम्य थीं !"

"मैं पिता को भी तो जानता हूं, ग्रायु। वह इतने कठोर नहीं हो सकते।"

"प्राणदण्ड देने के लिए ग्रौर कितना कठोर होना पड़ता है, राम ? वह भी साधारण प्राणदण्ड नहीं, पुत्र को माता के वध का ग्रादेश !"

"बाद में क्षमा का ग्रादेश भी उन्होंने ही दिया ग्रायु !" राम ने मुस्करा कर कहा।

"वह बाद की बात है किन्तु यदि एक क्षण और न रोक देते तो···"

"मैं उनके कोमल मन को पहचानता हूं।"

"तुझे आशा थी कि अन्तिम समय में वह अवश्य रोक देंगे ?"

"मुझे विश्वास था, आयु !"

"तेरा यह विश्वास टूट भी तो सकता था। क्या पता यदि महर्षि ने अन्तिम क्षणों में भगवती को नहीं ही क्षमा किया होता तो ? तब क्या होता राम ?"

"वाचाल है तू।" राम हंस पड़ा, "पिता का मन मैं तुझसे अधिक जानता हूं।"

आयु जैसे हार गया। सन्तोष भरी सांस लेकर बोला, "तेरा विश्वास बड़ा प्रबल है, मित्र ? तू वाकपटु भी तो है। मैं जान गया, यदि गुरुदेव न क्षमा करते, तब भी तू किसी प्रकार उन्हें प्रसन्न करके मना ही लेता। तुझ पर महर्षि का अपार स्नेह है।"

"अच्छा-अच्छा, बहुत हुआ। अब उठ।" राम खड़ा होकर धनुष और तूणीर उठाता हुआ बोला, "तेरा प्रलाप सुनकर व्यर्थ ही समय गंवाने से अच्छा है, लक्ष्यवेध का अभ्यास ही किया जाए। चल अब लकड़ियां काटते हैं।



राम ने पहले एकदम जड़ के पास लक्ष्य साधे। फिर उससे एक हाथ ऊपर, फिर उसमें भी एक हाथ ऊपर, फिर···फिर···

सूखे तने पर एक-एक हाथ का अन्तर देकर राम वेग से तीर चलाता रहा। कब, कहां कितने तीर मारे—आयु को गिनने का अवसर ही नहीं मिला। लगता है जैसे एक साथ कई व्यक्ति बाण चला रहे हों।

आयु ने प्रशंसा भरी आंखों से राम की ओर ताका। उसका वायां हाथ धनुप पर जमा हुआ था। दाहिने हाथ से वह पीठ पर बंधे तूणीर से वाण निकालता। आयु की दृष्टि उस हाथ की अन्य क्रियाएं देखने के लिए फैले, तब तक वही हाथ फिर वाण निकालने लगता।

"अद्भुत!"

राम ने धनुप को धरती पर टिका दिया। आयु की ओर देखकर हंसता हुआ बोला, "क्या?"

"तेरे हाथों की गति, मित्र। मैं तो देख ही नहीं पाया कि तू कब तीर निकालता है, कब धनुप पर रखता है, कब लक्ष्य सावता है और कब प्रत्यंचा खींचकर वाण छोड़ भी देता है। दृष्टि कुछ पकड़ हो नहीं पाती। यह अद्भुत ही है।"

राम हंसता हुआ खड़ा रहा।

आयु ने उच्छ्वसित स्वर में कहा, "तेरा यह वेग बड़े-बड़े योद्धाओं की भी गति रोक देगा। तू महा धनुर्धर है।"

"तुझे ईर्ष्या हो रही है?"

"नहीं, आर्य। धरती के पराक्रमी धनुर्धर योद्धा राम का मित्र होने का गर्व हो रहा है।"

"मित्र की झूठी प्रशंसा करने से मित्रघात का दोप लगता है, मूर्ख!"

आयु तिलमिला उठा। उसने रूक्षस्वर में कहा, "मैं झूठ नहीं वोलता, राम।"

"मित्र को प्रसन्न करने के लिए भी झूठ नहीं वोलना चाहिए।" राम उसे रुष्ट होता देखकर हंस पड़ा, "पूज्यपिता के कौशल के आगे मेरा पराक्रम कुछ भी नहीं है। वह महान हैं।"

"मैं गुरुदेव की वात नहीं कर रहा हूं, राम। किन्तु तेरा

धरती पर सम्भवतः कोई भी ऐसा कुशल धनुर्धर नहीं होगा !"

"मेरे जैसे अनेकों योद्धा होंगे।"

"अनेक नहीं हैं, राम। आयु सिर हिलाकर दृढ़ स्वर में बोला, "तू तो जानता है, जन्म से लेकर यहां आने तक मैं पिता के साथ देश-देश का पर्यटन ही करता रहा हूं। बहुत से युद्ध देखे हैं। बहुत से योद्धा देखे हैं, पर तेरे समान बस, एक ही है।"

सहसा राम की भौंहें सिकुड़ गईं। गम्भीर स्वर में उसने पूछा, "कौन है वह ?"

"अर्जुन।"

"अ···र्जु···न।" राम होठों-ही-होठों में बुदबुदाया।

"हैहयवंशी राजा कार्तवीर्य का पुत्र-अर्जुन। नर्मदा के तट पर महिष्मती नगरी का राजा कार्तवीर्य अर्जुन।"

"राम फिर बुदबुदाया, महिष्मती का राजा कार्तवीर्य अर्जुन।" उसने तीक्ष्ण दृष्टि से सुव्रत की ओर देखते हुए पूछा, "तूने उसमें ऐसा क्या देखा आयु ?"

"वह पराक्रमी है, राम। उसे स्वयं ऋषि दत्तात्रेय ने शस्त्र शिक्षा दी है। ऋषि ने उस पर प्रसन्न होकर अपना सारा ज्ञान उसमें भर दिया है। जब अर्जुन बाण वर्षा करने लगता है तो ऐसा जान पड़ता है, मानो एक नहीं, एक साथ एक सहस्र अर्जुन बाण चला रहे हों। इसीलिए तो उसे सहस्रार्जुन कहा जाता है। एक सहस्र योद्धाओं को वह अकेला ही युद्ध में रोक सकता है। जैसा वह पराक्रमी है, वैसा ही प्रबल उसका वेग है।"

"यदि यह सत्य है तो उसका हस्त-लाघव प्रशंसनीय है, आयु।"

आयु हंस पड़ा, "इस प्रशंसा का अधिकारी अब वह अकेला ही नहीं रहा, राम। बाण चलाने की तेरी गति तो मन की गति

से भी बढ़कर लगती है।"

"प्रसंशा का अधिकारी तो तू भी है। वाचालता में तेरे जैसा कोई नही होगा, आयु! अच्छा, चल अब लकड़ियां बटोर।"

"लकड़ियां?" आयु चौंक पड़ा। खेद भरे स्वर में बोला, "अरे संध्या होने वाली है। मैं सचमुच वाचाल हूं मित्र! तू वृक्ष काट रहा था, किन्तु मैंने ही तुझे बातों में उलझा लिया। वृक्ष काटना बीच ही में छूट गया।"

"नहीं आयु! वृक्ष तो कट चुका है।"

आयु ने कनखी से निकट ही खड़े वृक्ष की ओर ताका और हंस पड़ा, "तू परिहास प्रिय भी है, मित्र!"

"परिहास?...ओह!" राम के होठों पर रहस्यपूर्ण हंसी फैल गई, "समझ गया। किन्तु मैं परिहास में भी झूठ नहीं बोलता, आयु। ले, देख।"

धनुष पर बाण रखकर राम ने जोर से प्रत्यंचा खींचकर छोड़ दी। दूसरे ही क्षण जड़ के पास से एक हाथ तने का टुकड़ा सरक कर बगल गिर पड़ा। शेष तना अब भी सीधा ही खड़ा था। बस, पूरा वृक्ष एक हाथ छोटा हो गया था।

राम ने हंसकर आयु की ओर देखते हुए पूछा, "अब तो तुझे विश्वास आया?"

आयु सहसा कुछ बोल नहीं सका। लगा जैसे वह कुछ समझ ही न पा रहा हो। पल भर खड़ा-खड़ा जाने क्या सोचता रहा, फिर वृक्ष के निकट चला गया। जड़ के पास से कटकर निकले हुए तने के टुकड़े के मध्य भाग में अभी तक राम का बाण धंसा हुआ कांप रहा था। आयु बिना कुछ बोले ही मोटे से वृक्ष के चारों ओर घूम-घूमकर तने पर दृष्टि गड़ाए हुए जैसे कुछ खोजने लगा।

"आयु !" सहसा राम तेजी से झपटा और आयु को खींचता हुआ उस वृक्ष से काफी आगे तक दौड़ता चला गया। हवा का एक तेज झोंका आया और पूरा वृक्ष हरहरा कर नीचे गिर पड़ा। मोटे से तने के एक-एक हाथ के कई टुकड़े लुढ़कते हुए दूर तक छितरा गए।

"राम !" आयु आश्चर्य से फुसफुसा उठा, "अर्थात्...तेरे बाण से इतने-छोटे टुकड़ों में कट जाने पर भी वृक्ष अभी तक सीधा खड़ा था? नीचे से तूने कौशल पूर्वक एक टुकड़ा निकाल दिया, तब भी..."

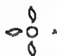
"अरे, तो इतनी देर से तू यही देख रहा था? हुं: !" राम हंस पड़ा, "चल अब लकड़ियां ले चल !"

धनुष को बाएं कंधे पर लटका कर राम आगे बढ़ा और झुक कर तने का एक टुकड़ा उठा लिया। घूमकर आयु की ओर संकेत करता हुआ बोला, "तू भी एक उठा ले।"

००

५







कोलाहल सुनकर महर्षि जमदग्नि यज्ञशाला से बाहर निकल आए। पलभर आहट लेकर उन्होंने पूर्व की ओर देखा। थोड़ी ही दूर पर धूल के बादल उठते दिखाई पड़ रहे थे। थोड़ी ही देर में धूल की घटा वृक्षों से भी ऊपर उठकर छा गई थी। लगता है जैसे बहुत से लोग एक साथ दल बनाकर इधर ही चले आ रहे हों।

कौन ?

"वैसे तो इधर से आने-जाने वाले व्यापारियों के साथ ऋषियों का दर्शन करने आते ही रहते हैं। राजा भी आया करते हैं। किन्तु···आज तो किसी के आने का सम्वाद नहीं मिला था।

तब कौन होगा ?

महर्षि जमदग्नि के माथे पर की रेखाएं गहरी हो उठीं। जल्दी से अध्ययन शाला की ओर बढ़कर उन्होंने ऊंचे स्वर में पुकारा, "रुमण्वान···सुषेण···वसु···"

पल भर में ही तीनों पुत्रों के साथ-साथ कई ऋषिपुत्र भी

उत्सुकतावश बाहर निकल आए।

महर्षि जमदग्नि ने उन्हें संकेत से अपने निकट बुलाया। पूर्व दिशा में निरन्तर बढ़ रही धूल का बादल दिखाकर चिन्तातुर स्वर में बोले, कुछ समझ रहे हो, "यह क्या है?"

सभी घबड़ा उठे। दबे स्वर में उन्होंने पूछा, "क्या है तात?"

"मैं भी कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। उठते हुए स्वर सुनो, लगता है जैसे लोगों का बड़ा भारी समूह कोलाहल करता हुआ इधर ही आ रहा है। राम कहां है?"

"वह और आयु—दोनों दोपहर से ही वन में गए हैं। कुछ देर लक्ष्यवेध का अभ्यास करेंगे। आते समय लकड़ियां ले आएंगे।"

"हूं।" महर्षि जमदग्नि पल भर रुककर बोले, "अच्छा छोड़ो। हां रुमण्वान, तुम कुछ ऋषिपुत्रों के साथ आगे बढ़कर देखो क्या बात है। शेष लोग भी अस्त्र-शस्त्र सम्हालकर आश्रम की रक्षा के लिए सावधान हो जाएं।"

पल भर में ही आश्रम के सारे पुरुष इकट्ठे हो गए। वेद पकड़ने वाले कोमल हाथ दृढ़ता के साथ घातक शस्त्रों पर कस उठे।

रुमण्वान तीन अन्य ऋषिपुत्रों को साथ लेकर शस्त्र सम्हाले हुए दूसरे मार्ग से वन में धंस गए।

शेष लोग आश्रम से बाहर निकलकर व्यूह-रचना करने लगे। दक्षिण की ओर ऊबड़-खाबड़ चढ़ाई है। बड़ी-बड़ी शिलाएं यूं ही आड़ी-टेढ़ी टिकी पड़ी हैं। उधर से न तो ऊपर से उतरा जा सकता है, न चढ़ाई ही चढ़ी जा सकती है। क्या पता कब कौन सी शिला स्पर्श होते ही लुढ़क जाए और चढ़ने या उतरने वाला व्यक्ति भी उसी के नीचे कुचल-पिसकर मृत्यु

के मुंह में समा जाए।

पश्चिम और उत्तर की ओर फैला हुआ भाग आश्रम की गौओं और अन्य पशुओं के लिए सुरक्षित है। सावधानी के लिए दूर-दूर तक कंटीले- झाड़-झंखाड़ों के पौधे उगा दिए गए हैं। उनमें से कई तो इतने विषैले हैं कि यदि शरीर में एक कांटा भी चुभ जाए तो बड़े-बड़े गजराज तक छटपटाकर मर जाएं। यह सावधानी वन के हिंस्र पशुओं से गोशाला की रक्षा के लिए की गई है। कोई व्यक्ति उधर से तो जीवित आ ही नहीं सकता।

बच रहता है, पूर्व का भाग। कुछ युवा ऋषिपुत्र धनुषों पर बाण चढ़ाकर आश्रम की रक्षा के लिए एकदम सामने खड़े हो गए। कुछ उनकी रक्षा के लिए निकट ही इधर-उधर छिपकर बैठ गए और शेष दाएं-बाएं और पीछे से शत्रु पर आक्रमण करने के लिए वन में चले गए।

लेकिन संकट सहसा ही टल भी गया।

दो ऋषिपुत्रों ने दौड़ते हुए आकर सूचना दी, "शुभ संवाद है! महिष्मती का राजा सहस्रार्जुन महर्षि का दर्शन करने के लिए आ रहा है। उसका स्वर्णयान उठाकर वेग से दौड़ने वाले सैनिकों के पैरों की धमक अब और निकट आ गई है।"

महर्षि की चढ़ी हुई भौंहें सहज हो गईं। उन्होंने पेड़ों पर चढ़े ऋषिपुत्रों को नीचे उतर आने का आदेश देकर कहा, "संकेत करके वन में गए लोगों को भी वापस बुला लो।"

थोड़ी ही देर में राजा की सवारी आ गई। विशाल भवन जैसे स्वर्णयान को ढोने वाले साठ सैनिकों ने आश्रम के द्वार पर ही पहुंचकर यान नीचे रख दिया।

महर्षि जमदग्नि चकित से खड़े रह गए। आज तक तो ऐसा कभी नहीं हुआ। छोटे-से-छोटे ऋषि-मुनि के आश्रम पर

भी जाते समय बड़े-बड़े राजा तक अस्त्र-शस्त्र त्याग देते हैं। पैदल ही दर्शन करने जाते हैं। फिर भृगुवंशी जमदग्नि के आश्रम पर···राजा अर्जुन ने उनकी उपेक्षा करने का दुस्साहस कैसे किया ? भार्गव तो हैहयों के पुरोहित भी हैं !

"महर्षि कुछ चिन्तित हैं।" राजा अर्जुन ने यान से नीचे उतरकर पास आते हुए कहा।

महर्षि जमदग्नि सतर्क हो गए, "नहीं तो। कल्याण हो, राजा। बिना किसी तरह की सूचना दिए···अरे, वत्स रुमण्वान, आश्रम में चलकर राजा के स्वागत की व्यवस्था कर।"

राजा अर्जुन ने बीच ही में टोक दिया, "यह क्या, ऋषि-वर ! दिन भर तपस्वियों को शस्त्र-शिक्षा ही देते रहते हैं क्या ? लगता है सबको योद्धा ही बनाएंगे।"

"नहीं तो।" महर्षि जमदग्नि हंस पड़े, "यह तो शिष्यों की रुचि पर होता है। हां, आश्रम की रक्षा के लिए प्रारम्भिक शिक्षा अवश्य सबको दी जाती है। वैसे इस समय···"

राजा अर्जुन खिलखिलाकर उच्छृंखलता पूर्वक हंस पड़ा।

महर्षि जमदग्नि तिलमिला उठे। भगवान दत्तात्रेय जैसे महर्षि का शिष्य अर्जुन इतना उद्दण्ड क्यों है ? अरुचि-सी हुई।

पर होंठ काटकर महर्षि जमदग्नि क्रोध पी गए। छिः, आश्रम पर आए अतिथि के साथ कठोर व्यवहार करने की बात उन्होंने सोची ही क्यों। फिर अर्जुन राजा है। थोड़ा प्रमादी स्वभाव का होना उसका अधिकार है।

"महर्षि फिर चिन्तातुर हो गए।"

महर्षि जमदग्नि ने सम्हलकर कहा, "ना। जब राजा स्वयं आगे खड़ा हो तो हम ऋषि-मुनियों को किस बात की चिन्ता।"

फिर सोने से मढ़े हुए रत्नजटित यान की ओर देखते हुए हंसकर बोले, "तेरा यान सचमुच दर्शनीय है, राजा। यह तो

सुना था कि भगवान दत्तात्रेय ने प्रसन्न होकर तुझे एक आश्चर्य-जनक यान उपहार में दिया है। आज उसे देख भी लिया। अद्भुत है।"

"यह तो अद्भुत है ही, किन्तु सुना है ऐसी ही अद्भुत एक चीज आपके पास भी है। वही देखने के लिए मुझे मार्ग छोड़कर इस वन में आना पड़ा है, महर्षि ! सोचा, देखूं तो…"

"क्या ?" महर्षि जमदग्नि चकित हो गए।

"आपकी होमधेनु।"

महर्षि जमदग्नि पल भर में ही सारी बात समझ गए। होमधेनु सचमुच ही आश्चर्यजनक है। आश्रम में और भी कितनी ही गाएं हैं, किन्तु होमधेनु के समान एक भी नहीं है। आठ गायों के बराबर वह अकेले ही दूध देती है। और गाएं प्रसव के कुछ दिन बाद धीरे-धीरे दूध देना कम करती जाती हैं, फिर एक दिन एकदम बन्द कर देती हैं, किन्तु होमधेनु सदैव दुही जाती है। प्रतिदिन तीनों वेला आर्या रेणुका स्वयं उसे दुहती हैं। आज तक उसने कभी एक बूंद भी कम दूध नहीं दिया। वह जैसे प्रकृति के नियमों से कुछ परे हो।

अर्थात राजमद से उन्मत्त इस अर्जुन की लोभी दृष्टि होम-धेनु पर भी पड़ गई ?

महर्षि जमदग्नि ने स्नेह से उसे समझाने की चेष्टा की, "मेरी कहां, राजा ! होमधेनु तो इन आश्रमवासियों की है।… आओ, भीतर आओ।"

महर्षि जमदग्नि प्रसंग बदलने के लिए मुड़े, किन्तु राजा अर्जुन ने फिर रोक लिया, "नहीं। बैठने का समय नहीं है। उधर नदी पर अंगरक्षक सैनिक मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

"उन्हें वहीं क्यों छोड़ दिया। किसी को भेजकर उन्हें बुला लेते हैं।"

"नहीं। मुझे रुकना नहीं है। बस होमधेनु के कारण ही यहां तक खिंचा चला आया। जब तक मैं लौटूंगा, तब तक वे कुछ आखेट ही कर लेंगे।"

"आखेट?" महर्षि चौंक पड़े, "तपोवन में सैनिकों का आखेट करना तो अनुचित है, राजा!"

"होगा।" राजा अर्जुन ने झुंझलाकर कहा, "वह होमधेनु कहां है? दिखाइए, आर्य।"

हतप्रभ से महर्षि जमदग्नि पशुओं के बाड़े की ओर मुड़ गए। चलते-चलते रुककर बोले, "पहले चलकर तनिक जल-पान कर लेते। आश्रमवासी प्रतीक्षा करते रहेंगे। देख लेना होमधेनु!"

"पहले होमधेनु।" रुक्ष स्वर में राजा बोला।

होमधेनु को देखकर राजा अर्जुन मुग्ध हो गया। दर्प से सिर झटक कर बोला, "यह गाय तो राजा की गोशाला में ही शोभा पाएगी, महर्षि!"

महर्षि जमदग्नि का मन धक् से रह गया। उन्होंने विरोध करते हुए कहा, "किन्तु यह तो आश्रम की है, राजा।"

"आश्रम धरती पर है और धरती राजा की है, ऋषि! होमधेनु मुझे चाहिए ही।" राजा अर्जुन ने दो सैनिकों को गाय खोलने का संकेत दिया।

सैनिकों को आगे बढ़ता देखकर महर्षि जमदग्नि की आंखें भक् से जल उठीं। वह तीक्ष्ण स्वर में पुकार उठे, "राजा..."

"ऋषी!" राजा अर्जुन ने गरज कर कहा, "तुम्हारा शाप सुनने के लिए मेरे पास समय नहीं है। सावधान!"

दूसरे ही क्षण राजा अर्जुन के धनुष से एक बाण उड़ा और महर्षि जमदग्नि अचेत होकर गिर पड़े।

६







राम क्रोध से तिलमिला गया। उफनते हुए स्वर में बोला,
'आपका अपमान करके भी अर्जुन जितने क्षण तक जीवित है,
उतना क्षण मेरे लिए नरक के समान है, तात ! मुझे आज्ञा दें।

"अर्जुन प्रचण्ड शक्तिशाली योद्धा है, पुत्र ! उसके समान
धनुर्धर..."

"जानता हूं, तात ! यह भी सुना है कि उसके युद्ध-कौशल
के कारण ही उसे सहस्रार्जुन कहा जाता है। किन्तु, आपका
अपमान करके तो काल भी नहीं बच सकता, पिता ! मुझे
अर्जुन से युद्ध करने योग्य उत्तम आयुध दें।"

"आयुध ! महर्षि जमदग्नि की दृष्टि दीवार पर टंगे
विशाल धनुष पर टंग गई। यह धनुष उन्हें अपने पिता महर्षि
ऋचीक से मिला था। उनको अपने पिता पूज्य भृगु से और
उनको...

देवों के विलक्षण शिल्पी विश्वकर्मा ने प्राचीन काल में
हड्डियों से इन्द्र के लिए वज्र और दो बहुत ही दृढ़ धनुष

बनाए थे। एक धनुष बाद में किरात आदि अनार्यों के योद्धा नेता शिव के पास चला गया और दूसरा नागों और गरुड़ों के नायक पराक्रमी विष्णु के पास। यही विष्णु का धनुष आगे चलकर किसी प्रकार भार्गवों के पास आ गया। कहते हैं, प्राचीन काल में विष्णु ने प्रसन्न होकर यह धनुष महर्षि भृगु को दे दिया था।

यह प्रचण्ड धनुष जितना दृढ़ है उतना ही भारी भी।

साधारण योद्धा तो उसे उठा भी नहीं पाएंगे। उसे झुका कर प्रत्यंचा चढ़ाना तो एकदम असम्भव ही है। स्वयं महर्षि जमदग्नि ने भी आज तक उसे नहीं चलाया। कभी कोई अवसर ही नहीं पड़ा।

महर्षि जमदग्नि ने निकट जाकर स्नेह से धनुष पर हाथ फेरते हुए कहा, "इसे देख तो, राम। यह पूर्वजों को भगवान विष्णु से मिला हुआ प्रचण्ड धनुष है!"

राम की आखें खिल उठीं। पूरी बात सुने बिना ही उसने लपक कर धनुष उतार लिया। लिपटी पड़ी तांत की डोरी दाहिने हाथ में लेकर उसने धनुष का एक छोर पैर के पास धरती पर टिकाया और दूसरे छोर को बांए हाथ से हुमक कर झुकाया और डोरी चढ़ा दी। फिर जोर से प्रत्यंचा टंकार कर बोला, "तात् आशीर्वाद दें।"

महर्षि जमदग्नि ठगे-से खड़े अपने पराक्रमी पुत्र का कौशल देख रहे थे। उसका स्वर सुनकर मानों वह नींद से जाग पड़े। प्रसन्नता से उमग कर उसे अंचल में समेटते हुए बोले, "विजयी बन, राम। यशस्वी हो!"

पिता के चरण छूकर राम तेजी से बाहर निकल आया।

□

वृक्षों की छाया से बाहर निकलते ही सोने के थाल का

ा रंग दमक उठा। यान को उठाए हुए कुछ सैनिक वेग से
े जा रहे थे। पीछे-पीछे कई सैनिक रस्सियों का घेरा बना-
र गौशाला से खोली हुई गौओं और दूसरे पशुओं को हांक
े थे।

राम ने क्रोध से होंठ चबा लिया। धनुष पर बाण चढ़ाता
ुआ बोला, "सुव्रत अवसर पाते ही तू पशुओं को वन की ओर
हांक दे। यदि अर्जुन उन्हें पकड़वाने को चेष्टा करेगा तो उसके
सैनिक भी छितरा जाएंगे। उस समय तुम उन्हें आसानी से
जीत लोगे।

आयु राम को बगल में ही खड़ा होकर शरसन्धान करने
लगा, किन्तु उसका बाण छूटता इसके पहले ही उसे वर्जित करके
राम ने कहा, "तू कुछ लोगों को साथ वृक्षों की ओट लेता
हुआ आगे बढ़कर पशुओं के पास पहुंच। सबसे पहले उन्हें मुक्त
कराना है। वहीं रहकर तू ऋषिपुत्रों की रक्षा कर।"

सहसा जैसे बाणों की बाढ़ आ गई हो। यान लेकर दौड़ते
सैनिकों के आगे एक दीवार-सी खड़ी हो गई। सैनिक अचकचा
कर ठमक गए। ठीक तभी पीछे से राम ने ललकार कर कहा,
"अरे चोर ठहर जा?"

शक्ति के मद में मत्त अर्जुन हैहय उचक कर खड़ा हो गया।
उसने चकित दृष्टि से पीछे देखा।

"चोरों की भांति पशुओं का अपहरण करके भाग मत
राजा। मैं, महर्षि जमदग्नि का पुत्र राम भार्गव, तुझे चुनौ
देता हूं। यदि तुझमें साहस हो तो रुककर मुझसे युद्ध कर।"

"ब्राह्मण तो याचक और वेदपाठी होते हैं रे ऋषिपुत्र
तू योद्धा कब से हो गया! हा...हा...हा...हा..." अर्जुन ज
से अट्टहास कर उठा।

"मैं तेरा काल हूं, राजा। बातें मत बना, शस्त्र लेकर

करते हुए वीरतापूर्वक मृत्यु का वरण कर। सावधान!"

राम के धनुष से छूटा बाण राजा के रत्नजटित मुकुट में धंस गया।

"सावधान, ब्राह्मण!" अर्जुन मुकुट सम्हालते हुए गरज पड़ा। धनुष उठाकर शरसंधान करता हुआ क्रोध से बोला, "अब तू मरेगा..."

राम जल्दी से सरक कर अर्जुन के लक्ष्य से बच गया।

अर्जुन ने दूसरा बाण साधते हुए अपने सैनिकों को आदेश दिया, "पशुओं को सम्हालो, वे भागने न पाएं!"

किसी सैनिक ने जोर से तुरही फूंकी। सम्भवतः नदी तट पर टिके अंगरक्षक सैनिकों को बुलाने के लिए संकेत किया गया था।

राम ने चिल्लाकर आदेश दिया, "आयु, अग्रज के साथ सबको लेकर तू सैनिकों को सम्हाल। इस पातकी के लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूं।"

अर्जुन शरसन्धान कर चुका था। राम ने तत्काल ही उछल कर एक बड़े से पेड़ की ओट ले ली।

एक पल का अवसर भी अर्जुन के लिए बहुत था। उसके कितने ही बाण राम के शरीर में धंस गए। तने के ऊपर दो मोटी डालें फूटकर अलग हो गई थीं—राम ने जरा पीछे पड़ी चट्टान पर खड़े होकर अपना मोरचा बांध लिया। दोनों डालों के बीच से उसे अर्जुन स्पष्ट दिखाई दे रहा था। दांत पीसता हुआ वह वेग से बाण चलाने लगा। बड़ा प्रयत्न करके वह अर्जुन के बाणों को काट भर पा रहा है, फिर भी कोई-कोई बाण आघात कर ही जाते हैं। राम खून से नहा उठा। किन्तु स्वयं राम एक भी आघात नहीं कर पाया। अर्जुन अवसर ही नहीं दे रहा है। अप्रतिम योद्धा है वह!

राम उच्छ्वसित होकर बोल पड़ा, "तेरा सहस्रार्जुन नाम र्थक ही है, राजा ! तू बलशाली है, किन्तु चोरी करके तूने गौरव पर कलंक लगा दिया। तूने शक्ति के मद में महर्षि अपमान किया है। आज तेरा प्राण नहीं बचेगा।"

"मूर्ख, तू भी दुस्साहसी है। तेरी प्रशंसा करता हूं। आज क इतनी देर तक युद्ध में किसी योद्धा ने मेरा सामना नहीं किया, किन्तु तू अब धरती पर नहीं रहेगा। तू उच्छृंखल है। मैं तुझे छोड़ूंगा नहीं।"

सहसा एक तीखा बाण आकर राम के दाहिने कंधे में धंस गया। पूरी बांह झनझना उठी। पीड़ा से सिसियाकर वह दुगुने वेग से बाण चलाने लगा।

बाण चलाते-चलाते राम की बाहें भर आईं, किन्तु अर्जुन अब भी उसी वेग से बाण चलाता जा रहा है। आयु सच कहता था, अर्जुन अकेला ही सहस्र योद्धाओं के समान तीर चलाता है। जब तक इसके हाथ में धनुष और तूणीर में बाण हैं, उसे जीतना असम्भव है।

राम ने चौड़े फालवाला तीखी धार का एक बाण चलाकर सहसा अर्जुन का धनुष बीच से काट डाला।

खिन्न होकर अर्जुन ने दूसरा धनुष उठा लिया।

राम ने शरसंधान अवसर दिए बिना शीघ्रता से उसको भ काट दिया।

तीसरा धनुष...

राम पहले ही तत्पर था।

फिर...

फिर...

अन्तिम धनुष भी कट गया।

...ने क्रोध से कांपते हुए कटे धनुष का टुकड़ा रा



ओर फेंक कर मारा और लम्बा-सा खड्ग उठाकर यान से नीचे कूद पड़ा।

राम ने भी तत्काल धनुष फेंक कर परशु हाथ में ले लिया।

दोनों योद्धा एक-दूसरे की ओर शार्दूल की भांति झपटे।

निकट पहुंचते ही खड्ग से आक्रमण करता हुआ अर्जुन गरज उठा, "मैं तुझे ऋषिपुत्र समझकर छोड़ता जा रहा था, किन्तु तू तो विषधर है। ले, मर!"

उसका खड्ग आकाश में चमक कर वज्र की भांति गिरा।

राम तुरन्त बगल हटकर बच गया। परशु आकाश में तान कर राम बोला, "आ, मेरा प्रिय परशु तो बड़ी देर से तेरा रक्त पीने के लिए लपलपा रहा है! झेल!"

अर्जुन ने परशु का आघात खड्ग पर रोक कर उसे निष्फल करते हुए पूरे वेग से प्रहार किया।

मृत्यु एकदम सिर पर लपलपा उठी…

सहसा राम झुककर बचा या आघात करने के लिए उछला कुछ पता नहीं—उसका विकराल परशु एक बार सिर से भी ऊपर उठकर चमका और दूसरे ही क्षण अर्जन की दाहिनी भुजा कटकर खड्ग सहित धरती पर गिर पड़ी।

तड़प कर अर्जुन ने खड्ग बाएं हाथ में उठाकर प्रहार करना चाहा।

राम का परशु एक बार फिर लपलपाया और अर्जुन की बाईं भुजा भी कटकर नीचे गिर पड़ी।

अर्जुन की लाल-लाल आंखों में मृत्यु की छाया तैर उठी। मरते हुए हाथी की तरह चिंघाड़ उठा।

राम ने हुंकार कर परशु का आघात किया। काल की जिह्वा की तरह परशु का फल लपका और दूसरे ही क्षण अप्रतिम योद्धा सहस्रार्जुन का मुकुटधारी सिर कटकर धरती पर उछलने

लगा। उसका खून से लथपथ भयानक दण्ड तड़पकर उठा, तेजी से लपककर राम की ओर झपटा, फिर टकराकर गिर पड़ा। तड़फड़ाता रहा।

इतनी ही देर में अर्जुन के आधे से अधिक सैनिक मर चुके थे। शेष अपने राजा को मरते देख प्राण बचाने के लिए भाग कर वन में छिप गए।

राम ने खून से भीगे केशों को पकड़कर अर्जुन का सिर उठा लिया और आश्रम की ओर दौड़ पड़ा।



"अर्जुन को आपका अपमान करने का दण्ड मिल गया, तात! मैंने उसे अपने इसी परशु से काट डाला है।" राम ने अर्जुन का सिर महर्षि जमदग्नि के आगे रखते हुए कहा, "सहस्र-योद्धाओं के समान बलशाली राजा अर्जुन के भुजदण्ड धरती पर कटे पड़े हैं और सिर आपके श्रीचरणों में "पिता प्रसन्न हों..."

"प्रसन्न हुआ, पुत्र!" महर्षि जमदग्नि ने आगे बढ़कर राम को छाती से लगा लिया, "तू पराक्रमी है। परशुराम है।"

निकट ही खड़ा आयु उमग कर चल पड़ा, "राम महा-पराक्रमी है! राम परशुराम है!"

अन्य ऋषिपुत्र भी हर्षोमन्त-होकर उछलने लगे, "परशुराम महान है!"

"परशुराम अजेय है!"

७




सहसा मानों भूकम्प आ गया हो।

उस दिन भी ऐसा ही हुआ था। यज्ञशाला में बैठे महर्षि जमदग्नि कोलाहल सुनकर चौंक पड़े थे। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र रुमण्वान को आगे बढ़कर कारण जानने की आज्ञा दी और जल्दी-जल्दी आश्रम की रक्षा की व्यवस्था करने में तत्पर हो गए।

किन्तु…

यदि उससे दुगुनी व्यवस्था होती, तब भी क्या हो सकता था! राजा अर्जुन पशुओं को हांक ही ले गया था। वह तो कहो कि राम ने रक्षा कर ली। केवल पशुओं को ही नहीं छुड़ा कर लाया, राजा को उसकी उद्दण्डता का दण्ड भी दिया।

अभी राम की आयु ही क्या है! फिर भी अद्भुत पराक्रमी है। परशु तो पल भर के लिए भी नहीं छोड़ता। उसके हाथ में परशु हो तो वह एक बार काल से भी लड़ सकता है।

फिर भी उसी दिन से देवी रेणुका को बड़ा डर लगने लगा

है। हर क्षण मन में जाने कैसी आशंका धड़कती रहती है। तनिक-सी अपरिचित आहट मिलते ही वह चौंक पड़ती हैं, कहीं···

धरती पर अब कितना अधर्म होने लगा है। क्षत्रिय राजा होते हैं रक्षा के लिए। वही तो ब्राह्मणों को दान देते हैं। पर राजा अर्जुन तो स्वयं ब्राह्मण का धन छीनने आ गया था! जब इतने प्रतापी राजा ऐसा पाप कर्म करते हैं, तब और किसका भरोसा किया जाए। क्या पता कब किस राजा का मन पापी हो जाए···

कोलाहल सुनते ही देवी रेणुका व्यग्र हो उठीं। महर्षि यज्ञशाला में उपासना कर रहे हैं। इस समय और कोई है भी नहीं। यदि कोई आ ही गया तो उसका स्वागत-सत्कार करने भी उसे ही जाना पड़ेगा। तब भी ··

मन से एक पल के लिए भी भय जाता नही। वह उठकर यज्ञशाला में आ खड़ी हुई।

महर्षि संध्या में लीन थे।

तब ?

बुलाएं ?

किन्तु कहीं क्रुद्ध हो गए तो ?

नहीं-नहीं। उससे तो अच्छा है, कुछ भी हो जाए-प्रलय ही सही, किन्तु महर्षि का क्रोध सहना तो उससे भी कठिन है।

देवी रेणुका कांप कर दूसरी ओर ताकने लगीं।

कोलाहल क्रमशः निकट आता जा रहा था।

रेणुका कुछ समझ नही पाई। हृदय धड़कने लगा। आशंकित दृष्टि से वह एक बार वन को ओर ताक कर लगा-तार निकट आते कोलाहल को सुनने समझने की चेष्टा करने. फिर असफल होकर निर्जन आश्रम की ओर ता· ···और

अन्त में उनकी दृष्टि समाधिमग्न महर्षि के गम्भीर चेहरे पर अटक जाती।

महर्षि अभी तक उपासना कर रहे हैं।

कोलाहल और निकट सुनाई पड़ने लगा।

रेणुका त्रस्त हो उठीं। महर्षि की समाधि भंग करें तो उनका क्रोध···नहीं-नहीं···

तब ?

कोलाहल !

गर्जन !

उत्पात !

निकट···और निकट···

"आर्य ! सहसा रेणुका चीख पड़ीं।

साधारण लोग नहीं। पूरी एक सेना। क्रोध से तमतमाए योद्धा पैर पटकते हुए आश्रम रौंदने लगे। उनके पीछे-पीछे शस्त्र चमकाते हुए असंख्य सैनिक विना अनुमति लिए ही आश्रम की बाड़ तोड़कर भीतर घुस आए।

आगे-आगे चलता योद्धा गरज उठा "हत्यारा जमदग्नि कहां है ?"

रेणुका स्तब्ध रह गई। समझ में तो नहीं आया, किन्तु कुछ अशुभ होने वाला है—यह रेणुका अच्छी तरह जान गई। उन्होंने लपक कर वेदी पर बैठे महर्षि जमदग्नि को झकझोर दिया, "आर्य···आर्य···जल्दी उठिए। अनर्थ होने वाला है, आर्य···जल्दी···हे भगवान।"

निष्फल होकर हांफती हुई रेणुका भाग कर वाहर निकलीं।

सैनिक मानों विक्षिप्त हो उठे थे। क्रोध से चिल्लाते हुए वे कुटिया में लगी वांस की खपच्चियां और छप्पर से फूस नोचने लगे।

रेणुका की आंखें डबडबा आईं। उसने एक बार फिर महर्षि को उठाने की चेष्टा की, "आर्य, अनर्थ हो रहा है। प्राण बचाइए···हा दैव ! मैं क्या करूं···आर्य···आर्य···"

"वह नीच कहां छिपा है, उसे खोजो।" बाहर से किसी की गरज सुनाई पड़ी, "आश्रम में जो भी मिले उसका वध कर दो—सबका। हमें पिता अर्जुन का प्रतिशोध लेना है। कोई न बचने पाए। खोजो···सारा आश्रम उजाड़ दो !"

"आर्य···आर्य···"

सहसा कई योद्धा यज्ञशाला में घुस आए।

रेणुका झपटकर बीच में खड़ी हो गई। अपने शरीर से महर्षि को ओट में करती हुई कातर स्वर में चिल्लाई, "क्षमा कर राजा, अभी वह समाधि में हैं, तू···"

योद्धा की आंखें भक् से जल उठीं। रेणुका का हाथ पकड़कर झटकता हुआ गरज पड़ा, "दूर हट !"

रेणुका का सिर दीवार से जा टकराया। लगा जैसे आंखों के आगे अंधेरा छा गया हो। यज्ञशाला मानों नाचने लगी हो। वह, हाथ में खड्ग उठाए योद्धा···समाधि में लीन महर्षि···यज्ञ कुण्ड···सब कुछ नाच रहा है···

योद्धा के हाथ का खड्ग ऊपर उठा।

रेणुका चीत्कार कर उठीं, "राजा···रक्षा कर···तू राजा है···समाधि में लीन ऋषि को···ब्राह्मण को···"

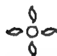
योद्धा का खड्ग लपलपा कर बाज की भांति तेजी से झपटा और···महर्षि जमदग्नि का सिर कट कर झटके से अग्नि कुण्ड में गिर पड़ा।

रेणुका ने यह नृशंस काण्ड देख कर दोनों हाथों से आंखें मूंद लीं अचेत-सी वह बाहर की ओर दौड़ी, "राम···राम··· तू कहां है राम !"

योद्धा गरजता हुआ सैनिकों को आदेश दे रहा था, "पशुओं को खोल लो। आश्रम में आग लगा दो। कुछ भी बचने न पाए। स्वर्ग में बैठे मेरे पराक्रमी पिता कार्तवीर्य सहस्रार्जुन यह देखकर प्रसन्न हों। विनाश···महाविनाश !"



८





राम कटे पेड़ की तरह पछाड़ खाकर पिता की निर्जीव देह पर गिर पड़ा। बिलख उठा, "पिता···"

अायु ने जल्दी से झुककर राम को सम्हाला, "धैर्य रख, मित्र ! तू बली है। योद्धा है। यदि तू ही इस प्रकार अधीर हो जाएगा तो हमें कौन ढाढस बधाएगा। अग्रज को देख···भगवती को देख···ऋषियों को देख···सभी तो व्याकुल हो रहे हैं। साहस कर, मित्र। मां को धैर्य दे···"

"मां !" राम देवी रेणुका की गोद में गिर कर रोने लगा।

रेणुका इतनी देर से जैसे इस लोक में थीं ही नहीं। राम का स्वर सुनकर वह सहसा जाग उठीं। खाली-खाली आंखों से ताकती हुई विक्षिप्तों की तरह बोलीं, "राम, तू आ गया !"

"मां ! यह क्या हुआ मां ?"

"तू नहीं देख रहा है, पुत्र !" देवी रेणुका अभी तक नहीं सहज हो पाई थीं। वह जैसे कहीं बड़ी दूर से बोल रही थीं"

कुछ हो गया है, वह तेरे सामने ही तो है। आश्रम जल कर
ख हो गया। महर्षि की हत्या कर दी गई…पशुओं का हरण
गया…बस मैं अकेली बची रह गई हूं! यह महाविनाश मैंने
पनी आंखों से देखा है, फिर भी हृदय पर पत्थर रखकर
जीवित रही कि तुझे बता सकूं…"

"बताओ मां…जल्दी बताओ…किसने किया है यह? किसको अपने जीवन से वैर हो गया है? भार्गवों के आश्रम में इस प्रकार का अनाचार करने वाला पातकी कौन है?"

"सहस्त्रार्जुन का पुत्र।" जैसे श्मशान से कोई शव उठकर बोल पड़ा हो, "घड़ी भर हुआ, वह सेना लेकर आया था। पहले पूरे आश्रम को रौंदता रहा। छप्परों को गिरा दिया…"

"और पिता चुप बैठे यह सब देखते रहे। उन्होंने उस दुरा-चारी को दण्ड नहीं दिया!"

"आर्यपुत्र समाधि में मग्न थे राम। मैंने कितनी ही बार उनको उठाने का प्रयत्न किया, पर वह…"

"हुं!" राम फुफकार उठा, "तब? बताओ मां; तब क्या किया उन दस्युओं ने? सब कुछ बताओ, मैं मन कठोर करके सुन रहा हूं!"

आयु को लगा जैसे राम की देह फूलकर दोगुनी होती ज
रही है। क्रोध उसके चौड़े वक्ष में समा नहीं रहा है। न
फैलती जा रही हैं।

"महर्षि को खोजते हुए वे यज्ञशाला में घुस आए!" रेणु
जैसे उस क्षण की कल्पना करके सिहर उठीं। कांपते स्वर
बोलीं, "मैंने उस योद्धा से विनती भी की, किन्तु उसने मे
हाथ पकड़कर दूर फेंक दिया…"

"पातकी।"

आयु को लगा मानो राम की गुर्राहट सारे आकाश में

उठी हो।

"मेरे देखते ही देखते उसने अपने विकराल खड्ग से महर्षि को काट डाला।"

"हत्यारा!"

"मैं तुझे पुकारती हुई भाग चली—वह कह रहा था, आश्रम को जलाकर राख कर दो, स्वर्ग में बैठे मेरे पिता अर्जुन प्रसन्न हों। राम—"

"मैं भी अपने पिता को प्रसन्न करूंगा!" राम ने एक क्षण के लिए निकट ही बैठे अग्रेजों और दूसरे आश्रम वासियों की ओर देखा।

सब एक स्वर मे चिल्ला पड़े, "तू महापराक्रमी है, राम। परशुराम है। तू हमारा नेतृत्व कर। हम ऋषियों की सेना संगठित करके अर्जुन के पुत्र से इसका बदला लेंगे।"

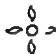
राम की अंगुलियां परशु पर कस उठीं। उसने दाहिना हाथ आकाश की ओर उठाकर भीषण स्वर मे कहा, "मैं, जामदग्नेय राम, पिता के शव की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूं—इसी परशु से हैहयवंशी क्षत्रियों का काटकर पिता का बदला लूंगा। देवता मेरी प्रतिज्ञा के साक्षी हों—केवल महिष्मती का राजकुल ही नहीं, समूची धरती से मैं हैहयवंश का नाश कर दूंगा। उनके रक्त से ही मैं पिता का तर्पण करूंगा। उन्हें प्रसन्न करूंगा।"

आयु को लगा जैसे राम का शरीर फूलकर और विराट हो गया है। उसके भयानक नेत्रों में ज्वाला धधकने लगी—प्रलय की ज्वाला। यह वह ज्वाला है, जिसमें धरती के जाने कितने योद्धा भस्म हो जाएंगे। उसका वेग बढ़ता ही जा रहा है।

त्रस्त-सा आयु हांफता हुआ राम की आंख बचाकर पीछे सरक गया।



९





युद्ध···युद्ध···युद्ध···

क्षत्रियों का विनाश।

भय। आतंक। त्रास। हाहाकार। चीत्कार। रुदन।

कोलाहल से जैसे सारा आकाश कांपने लगा।

किन्तु राम कुछ नहीं सुन रहा है। विधवाओं का रुदन उसके कानों को नहीं छू पाता। पांवों के नीचे कुचले जाते शवों पर उसकी दृष्टि नहीं अटकती। वह कुछ नहीं देख रहा है। कुछ नहीं समझ रहा है। उसके कानों में केवल मां का आर्तरुदन गूंज रहा है। आंखों के आगे अग्नि कुण्ड में, पिता का कटा हुआ सिर सुलग रहा है···।

राम ने आश्रमवासियों को आदेश दिया है—भय से क्षत्रियों को दिक्षा न दी जाए। आश्रम में उनका प्रवेश भी वर्जित है। क्षत्रियों से कुल एक ही नाता है—जहां भी मिलें, उसे काट दो। उसे मिटा दो।

प्रतिशोध। भयंकर प्रतिशोध।

धरती पर से क्षत्रियों का नाश।

कोई नहीं बचेगा।

कोई नहीं···

राम ने झपट कर माता के अंक में दुबके क्षत्रिय शिशु को खींचा और परशु के एक ही आघात से काटकर फेंक दिया।

कोई नहीं बचेगा।

यह शिशु भी बड़ा होकर विषधर बनेगा। राजा बनेगा। न बने राजा। क्षत्रिय का पुत्र तो है। इसलिए···

कोई नहीं बचेगा। कोई नहीं···वंश की एक बेल तक नहीं···एक अंकुर भी नहीं···

राम जोर से अट्टहास कर उठा।

"सावधान! बालक की हत्या करने वाले अधम··· आततायी, संभल!"

राम झटके से घूम पड़ा। वेग से दौड़ता हुआ रथ एकदम निकट आकर खड़ा हो गया। उसमें नवोढ़ा पत्नी के साथ खड़ा हृष्ट-पुष्ट युवक धनुष सम्हालता हुआ गरजा, नारकीय, तू नहीं जानता महिष्मती के परम प्रतापी राजा···"

राम की आंखें भक से जल उठीं। गुर्राकर उसने पूछा, "तू कौन है?"

"मैं महारथी दर्भ···"

राम फिर बीच ही में गुर्रा उठा, "क्षत्रिय है न?"

"मैं हैहयवंशी प्रतापी···"

"अब तू भी मर। एक भी क्षत्रिय नहीं छोड़ूंगा ले!"

परशु के एक ही प्रहार में महारथी दर्भ दो टुकड़े हो गया।

"आर्य!" दर्भ की नवोढ़ा पत्नी सहसा आर्तस्वर में चिल्ल उठी।

राम जोर से अट्टहास कर उठा।

क्षत्राणी रथ से नीचे कूद पड़ी। कातर स्वर में बिलखती हुई प्रलाप करने लगी।

"ले पापी···दस्यु···मुझे भी मार डाल। राक्षस···"

"चुप!" राम गरज पड़ा।

"मार···मार···तू मुझे भी मार···तू विक्षिप्त हो गया है। रक्त की प्यास है तुझे तो, मुझे भी मार डाल···मार···मेरा रक्त पीकर अपनी प्यास बुझा ले!"

राम ने उपेक्षा से सिर झटक दिया। भारी स्वर में बोला, "हां, मैं विक्षिप्त हो गया हूं। मैं रक्त का प्यासा हूं। अभी और रक्त बहाऊंगा···जब तक···"

"तो ले, मेरा भी रक्त बहा···मुझे भी काट···"

"चुप रह। तू नारी है, इसीलिए बोल रही है। यदि पुरुष होती तो मेरा परशु अब तक तेरा भी रक्त पी चुका होता। जानती है, यह परशु महिष्मती के राजवंश के आबाल वृद्ध—सबको मृत्यु की गोद में सुला चुका है। किन्तु तुझे···जा, भाग जा···"

"कायर! तू भी नीति और धर्म की बातें करता है? थू! मैं ही तेरा प्राण लूंगी।" उसने झपट कर रथ पर पड़ा विकराल खड्ग उठाते हुए कहा, "तुझ जैसे पातकी को तो शूद्र भी मार सकता है। मैं महारथी दर्न की भार्या चित्रा तेरा वध करूंगी! ले सम्हाल···"

राम उछलकर दूर हट गया। दांत पीसकर बोला, "भार्गववंशी महर्षि जमदग्नि का पुत्र राम हत्यारा दस्यु नहीं है। नारी के ऊपर शस्त्र नहीं उठाना चाहता, किन्तु···तू मेरा क्रोध नहीं जानती, मूर्खा!"

चित्रा के हाथ से छूटकर खड्ग नीचे गिर पड़ा। र

वह कई पग पीछे सरक गई। फटी-फटी आंखों से राम की ओर देखती हुई फुसफुसाई, "जामदग्नेय राम······राम भार्गव ! परशुराम···" भय से कांपती हुई चित्रा राम के चरणों में लोटने लगी, "महर्षि···अनजान में कहे गए अपमानजनक शब्दों के लिए क्षमा करें। दासी प्रणाम करती है···"

"सौभाऽऽऽ···" सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देते-देते राम अटक गया। खिन्न स्वर में बोला, "प्रसन्न हो, आर्या। तेरा क्या प्रिय करूं ?"

चित्रा अपने पति दर्भ की रक्त से सनी देह की ओर देखकर विलख उठी, "प्रसन्न होऊं···मेरा प्रिय···अब क्या करेंगे, महर्षि···मेरे लिए अब संसार में कौन सी प्रसन्नता बची है। मेरा प्रिय करके क्या होगा···"

राम का मन पिघल गया। गीले स्वर में उसने कहा, "राजा अर्जुन के पुत्रों ने युद्ध से विरत रहने पर भी आततायी पिशाचों की भांति मेरे पिता की हत्या की थी, शुभे। उस समय वह समाधि में लीन थे तब भी···पीड़ा से छटपटाती मां को सान्त्वना देने के लिए मैंने हैहयों का नाश करने की प्रतिज्ञा की है···"

"मैंने सुना है, महर्षि। किन्तु···किन्तु राजा के अपराध का दण्ड सबको क्यों मिल रहा है, महर्षि ? अभी-अभी जिस शिशु को आपने काट डाला था, उस अबोध ने आपका क्या अपराध किया था, महर्षि···"

"वह भी क्षत्रिय का पुत्र था !" राम ने घृणा से उस बालक की ओर देखकर कहा, "बड़ा होकर वह भी राजा बनता। सत्ता के मद में मस्त होकर अनाचार करता। इसीलिए···किसी को नहीं छोड़ूंगा···एक भी क्षत्रिय फिर अनाचार करने के लिए बचेगा···कोई नहीं···"

"आपका मन पत्थर की भांति कठोर है, महर्षि !" कराह-कर चित्रा दर्भ की शीशरहित देह से चिपककर सिसकने लगी, "आर्यपुत्र···आप···अभी तो मैंने ठीक से आपको देखा भी नहीं था···मैंने ऐसा क्या पाप किया था कि मंगलसूत्र पहनते ही विधाता ने क्रूर होकर मेरा सुहाग छीन लिया···महर्षि···"

"तेरा पति आगे पड़ गया···हुं···"राम पल भर खड़ा कुछ सोचता रहा। बोला, "आर्या, तेरे कारण ही मैं यह व्यवस्था करता हूं :कि जो भी क्षत्रिय विवाह का कंगण बांधे होगा, उसे तीन दिन तक मेरा अभय मिलेगा। तीन दिन तक सामने पाकर भी मैं उसका वध नहीं करूंगा, किन्तु उसके बाद···"

"आर्य···महर्षि···क्रोध शान्त हो···यदि यह नरमेध चलता रहा तो···"

एक दिन धरती क्षत्रियों से हीन हो जाएगी। सारी वसुन्धरा दम्भी क्षत्रियों के रक्त से भीग उठे। हो यही हो।" राम जोर से अट्टहास कर उठा।

"महर्षि···"

"हां, मैं यज्ञ कर रहा हूं। क्षत्रिय मेध !"

"महर्षि कृपा करें। प्रसन्न हों। यह नरमेध कब तक चलेगा···"

"कहा तो, जब तक धरती पर क्षत्रिय होंगे। मैं क्षत्रियों का नाश करूंगा। उनके रक्त से पिता का तर्पण करूंगा। शोक संतप्त माता का हृदय ठंडा करूंगा ?"

"भयानक···महर्षि को इन विधवाओं को रोते-कलपते देखकर दया नहीं आती ? माताओं की गोद से छीनकर उनके पुत्रों को काटते समय मन में करुणा नहीं उपजती ?"

"नहीं।" राम का स्वर कठोर हो गया, "जब मेरी मां विधवा होकर कलप रही थी, तब किसके मन में दया आई

थी। जब पिता की मृत्यु से दुखी होकर हम कलप रहे थे तब किसके मन में करुणा उपजी थी? मरें। सब मरें। विह्वल होकर तड़पती मां को साक्षी बनाकर मैंने प्रतिज्ञा की है…"

"आर्य की माता विधवा हो गई, एक उन्हीं के दुःख के कारण…"

"सावधान।" राम गरज उठा, "तूने मां का दुख नहीं देखा है। यदि अनजान में भी उनके प्रति कुछ कह गई तो…"

"कहूंगी। अवश्य कहूंगी। अब मुझे किसके लिए जीना है। किसलिए डरूं। मैं बार-बार कहूंगी। आर्य ने एक विधवा की पीड़ा मिटाने के लिए कितनी ही नारियों का सौभाग्य छीनकर विधवा बना दिया। पिता से वंचित होकर अकेले ही कितनी संतानों को पिता के स्नेह से वंचित कर दिया। यह कहां का न्याय है, आर्य?"

राम सहसा कुछ बोल नहीं सका।

क्षत्राणी चित्रा एक पग आगे बढ़ आई, "बोलो, आर्य! तुम तो ऋषिपुत्र हो। विद्वान हो। राजा तो केवल रक्षक होता है।" ब्राह्मण ही राजा को धर्म का पथ दिखाता है। वही नियम बनाता है। समाज में व्यवस्था स्थापित करता है। मुझे बताओ क्या इसकी भी कोई व्यवस्था की है? तुमने तो अपनी माता का दुख देखकर प्रतिज्ञा करली, किन्तु इन कलपती हुई माताओं का दुख कौन दूर करेगा? इनकी पीड़ा कौन देखेगा? तुम्हारी माता के तो पांच पुत्र हैं। जब उन्हें सन्तोष नहीं हुआ तो ये नारियां जिनके पति और पुत्र—सब तुम्हारे इस यज्ञ की बलि चढ़ गए…इनका क्या होगा, ये कैसे सन्तोष करेंगी? इनको कौन सान्त्वना देगा? इनके लिए क्या व्यवस्था दी है तुमने? इन्हें किस अपराध का दण्ड मिल रहा है? तुम्हारा यह कैसा न्याय है भार्गव राम?"

"आर्या···!"

राम को लगा जैसे चित्रा के मन की टीस उसके हृदय में चुभ गई हो। रोती हुई नारियों का कोलाहल उसका मन खरोचने लगा। नन्हें-नन्हें बच्चों का चीत्कार उसके हृदय में सुलग उठा। पीड़ा से सिसिया कर राम धीरे-धीरे एक ओर को घूम पड़ा।

"कहां चल दिए, आर्य ?" चित्रा घूमकर फिर सामने आ खड़ी हुई, "आप चुप क्यों हो गए। बोलिए···कुछ तो कहिए··· पति, पुत्र, पिता से वंचित इन स्त्रियों का क्रन्दन आप नहीं सुन रहे हैं क्या ? एक बार चलकर निकट से सुन लीजिए। आपने अपनी माता को तो छटपटाते देखा है न ! पिता के अभाव की पीड़ा भी झेली है। इनकी पीड़ा भी···"

राम का मन अकुला उठा। वह रिक्त आंखों से इधर-उधर ताकता हुआ भर्राए स्वर में बोला, "मुझे जाने दे, आर्या, मुझे जाने दे···"

राम तेजी से वन की ओर बढ़ चला। बस्तियों में उठते इस कातर क्रन्दन से, इन आर्त चीत्कारों से जितनी दूर जा सके··· जितनी जल्दी जा सके···यह क्रन्दन सुनते-सुनते वह विक्षिप्त हो जाएगा। पैर मानों रह-रहकर कटे हुए शवों पर पड़ जाते हैं। राम लड़खड़ा उठता है फिर सम्हल कर वन की ओर चलने लगता है। तेज। और तेज। और तेज···



१०







राम के मन में अथाह पीड़ा भर गई है। एक पल के लिए भी चित्त शान्त नहीं होता। उठते-बैठते, सोते-जागते हर क्षण कानों में करुण क्रन्दन गूंजता रहता है। आंखों के आगे रक्त में सने शव तड़फड़ाते रहते हैं।

राम छटपटा उठता है। वन के एकान्त में भी लगता है जैसे वह युद्ध भूमि में खड़ा हो—रुधिर से सने लोथों की भीड़ उसे घेर लेती है।

राम इस भयानक दृश्य से छुटकारा पाना चाहता है। क्या करे? कहां जाए? किससे मिले?

कभी-कभी मन होता है कि किसी ऋषि के तपोवन में जाकर रहने लगे। पर…भीड़ की कल्पना करते ही वह शिथिल पड़ जाता है।

किन्तु उस एकान्त में भी तो…

तब?

क्या करे?

उस दिन सहसा ही ऋषि परावसु आ गए। राम प्रसन्न हो
।
ऋषि परावसु विश्वामित्र के पौत्र ऋषि रैम्भ के पुत्र होने
ारण सम्बन्धी भी हैं। विश्वामित्र पिता के मातुल थे।
र्य परावसु अग्रज हैं।

राम ने उचित आसन देकर ऋषि परावसु का आदर-सत्कार
या, "आर्य आश्रम पर कुशल तो हैं?"

"कुशल!" ऋषि परावसु खिन्न होकर हंस पड़े।

राम चिन्तित हो उठा। आग्रह भरे स्वर में बोला, "क्या
हुआ, आर्य? शुभ तो है! आप क्लान्त क्यों दीख रहे हैं?"

"नहीं। क्लान्त नहीं हूं, भद्र।"

"कोई विशेष कारण? चिन्तित तो हैं, आर्य।"

"नहीं। जो है, वह तो होना ही था, राम। विशेष कारण
तो तब होता है जब आकस्मिक रूप से कोई स्थिति सामने आ
जाए। किन्तु जब कोई कार्य जान-बूझ कर किया जाता है और
उसका परिणाम अवश्यम्भावी होता है तो उसे विशेष कारण
नहीं कहा जाता।"

"मैं कुछ समझा नहीं, आर्य!"

"तू अब नहीं समझ सकेगा, राम, अब क्यों समझेगा!"

राम कुछ पल अचकचाया-सा बैठा रहा, फिर मन्द स्वर में
बोला, "आर्य मुझ पर अप्रसन्न हैं?"

"मैं क्यों अप्रसन्न होऊंगा।"

"मैंने कुछ अनुचित किया?"

आर्य परावसु ने सिर झटक कर कहा, "मैं तेरा उचित-अनु
चित नहीं जानता, राम। हां, तूने जो कुछ किया, उसका परि
णाम अवश्य हम भुगत रहे हैं!"

राम एक पल के लिए स्तब्ध रह गया। रुक्ष स्वर में बो

"आर्य स्पष्ट कहें। यदि मैंने अपराध किया है तो उसका परिमार्जन भी मैं ही करूंगा। मेरे किए का परिणाम आर्य के लिए क्यों कष्टकर होने पाएगा…"

"मेरे लिए ही क्यों, सबके लिए कष्टकर हो रहा है।" ऋषि परावसु ने भी तेज पड़कर कहा, "तुम तो इस एकान्त में बैठ कर प्रायश्चित कर रहे हो। किन्तु कभी तुमने हम महर्षियों के विषय में भी सोचा है, जिन्हें अपना कर्तव्य निभाने के लिए हर क्षण राजा और प्रजा से सम्पर्क बनाए रखना आवश्यक होता है। हमको तो तुमने संकट में डाल दिया राम!"

"और स्पष्ट करें आर्य।" राम का स्वर तीखा हो गया, "मेरे एकान्तवास से आप लोगों के कर्तव्य पालन में कौन-सी बाधा पड़ रही है—यह मैं अभी तक नहीं समझ पाया। आप बताइए, आज्ञा पाते ही मैं उस बाधा को दूर कर दूंगा कहिए तो—।"

"कह कर ही क्या करूंगा। जिन राजाओं को तुमने काट डाला है, उन्हें फिर से जिला दोगे क्या? हुंः!"

"उसकी चर्चा क्यों, आर्य? वह तो मैंने प्रतिज्ञा की थी "

"वही तो कह रहा हूं।" ऋषि परावसु स्पष्ट होकर बोले, "तुम तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर रहे थे। कभी ब्राह्मणों की स्थिति पर भी ध्यान दिया है? शूद्रों ने सेवा करनी छोड़ दी है। वैश्यों ने व्यापार करना बन्द कर दिया है। पहले कितने बड़े-बड़े साथ चला करते थे। धरती के इस छोर से उस छोर तक निश्चिन्त होकर वे क्रय-विक्रय करते। अब जानते हो क्या होता है? शूद्र निर्भय होकर दस्यु बन गए हैं। एकान्त की कौन कहे, नगरों में भी लूट होने लगी है। ऐसे में कौन श्रेष्ठ व्यापार करेगा—? रक्षक के बिना व्यापार चलता है?"

"शूद्र उच्छृंखल हो गए हैं। मैं प्रतीक्षा करता हूं—"
"रहने दो। रहने दो।" ऋषि परावसु ने उपेक्षा से सिर
टक दिया, "एकबार तुमने क्षत्रियों को मारने की प्रतिज्ञा की,
सका दण्ड तो हम भुगत ही रहे हैं —!"
"दण्ड? कैसा दण्ड?" राम का चेहरा तमतमा उठा,
आर्य ज्येष्ठ होने के कारण मेरा अपमान कर रहे हैं। जब तक
रे स्कन्धों से जुड़ी ये भुजाएं हैं, जब तक इन भुजाओं में बल
है और जब तक मुट्ठी में यह परशु है, तब तक धरती पर किस
क्षत्रिय में इतना साहस है जो जामदग्नेय राम को दण्ड दे और
वह दण्ड ब्राह्मणों को झेलना पड़े। आज भी मेरे आतंक से सारी
धरती कांपती है।"
"यह तुम्हारा दम्भ है, राम—।"
"आर्य!" राम का स्वर कठोर हो गया।
ऋषि परावसु ने दृढ़ स्वर में कहा, "मैं सत्य कह रहा हूं,
राम। तुमने झूठे दम्भ में आकर क्षत्रियों को मारने की प्रतिज्ञा
की और अब कायरों की तरह मुंह छिपाकर वन में चले आए।
क्यों? अब कहां हो गया तुम्हारा पौरुष? अब क्यों भूल गए
प्रतिज्ञा, केवल क्षत्रियों को ब्राह्मणों का वैरी बनाने के लिए यह
सब किया था? क्षत्रियों ने रुष्ट होकर रक्षा करनी बन्द कर दी
है। चारों ओर अराजकता फैल गई है। राजा अब ऋषियों
को भी दान नहीं देते। आश्रमों को आश्रय नहीं देते। इन
सबके कारण तुम्हीं तो हो। केवल तुम! तुम्हींने हम को घोर
अपमान और दरिद्रता का जीवन बिताने के लिए छोड़ दिया
है!"
"हां।" राम गुर्रा पड़ा, "मैंने ही प्रतिज्ञा की थी, इसीलि
आप कह सकते हैं, किन्तु मैं न तो अपनी प्रतिज्ञा ही भूला हूं औ
न मैं कायर ही हूं।"

राम ने उठकर बाणों से भरा तूणीर कन्धे पर लटका लिया। बाएं हाथ में विश्वकर्मा का बनाया हुआ हड्डियों का भारी धनुष और दाहिने हाथ में विकराल परशु उठाकर बोला, "मैं फिर क्षत्रियों का नाश करूंगा। निर्वंश कर दूंगा। कोई नहीं बचेगा। कोई नहीं।"

वह तेजी से झपटता हुआ गहन वन से बाहर की ओर बढ़ चला।



११







विनाश !

महाविनाश !

राम के इस नरमेध में युग अनजाने ही अपना सहयोग दे रहा था। सभी तो उसके साथ थे !

ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच वैमनस्य की खाई बढ़ती ही जा रही थी। क्षत्रिय ब्राह्मणों से घृणा करने लगे। ब्राह्मणों ने भी रुष्ट होकर अपने को सीमित कर लिया। राज-काज में भाग लेना छोड़ दिया।

जो शूद्र पहले क्षत्रियों के भय से उनके साथ थे, वे भी राम की भीषण प्रतिज्ञा सुनकर स्तब्ध रह गए। क्षत्रियों के साथ रहकर कोई भी राम के परशु से नहीं बच सकता। डरकर शूद्रों ने क्षत्रियों का शासन मानना छोड़ दिया। कई तो निश्शंक होकर दस्यु बन गये। सेवाकर्म को वे अपमान समझने लगे।

चारों ओर अराजकता ! लूट-पाट। रक्तपात।

भय से कांपते वैश्यों ने बहुमूल्य रत्नों को सुरक्षित रखने के



र धरती के नीचे गाड़ दिया। धन का अभाव होने लगा। वश्यकताएं हाहाकार करने लगीं। सुख मरीचिका बनकर गया।

असन्तोष ही असन्तोष।

कोई व्यवस्था नहीं।

कोई शासन नहीं।

राजाओं को युद्ध से अवकाश ही नहीं मिलता।

राम प्रचण्ड शक्तिशाली है।

युद्ध।

नरमेध।

क्षत्रियों का नाश।

धरती लाशों से पट गई।

कुरुक्षेत्र में तीन कुण्ड रक्त से भर गए।

राम को तब भी शान्ति नहीं है। अभी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई। धरती पर जाने कितने क्षत्रियों की देह पर अभी भी सिर अटका हुआ है। वे भी कटेंगे। एक भी क्षत्रियं नहीं बचेगा।

राम का क्रोध बढ़ता गया। केवल हैहयवंशी ही नहीं जो क्षत्रिय उनकी रक्षा करेगा, वह भी शत्रु है। जो शत्रु की सहायता करे, वह भी शत्रु है। धरती के सारे क्षत्रिय शत्रु हैं। राम सबको काट डालेगा। कहीं भी हो कोई भी हो।

कश्मीर। दरद। कुन्ति। मालव। अंग। वंग। कलिंग विदेह। रक्षोवाह। वीतिहोत्र। त्रिगर्त। मार्तिकावत...

सहस्र योद्धाओं के समान बलशाली हैहयराजा अर्जुन विजेता जामदग्नि राम ने क्षत्रिय जति का काल बनकर धर के सारे खण्डों को रौंद डाला।

हैहय अर्जुन के पुत्र गए। पौत्र गए। सम्बन्धी गए जो क्षत्रिय हैं...वे सब गए। सब। पुरुवंशी वीर विदूरथ। देवत

के समान बली राजा सौदास। परमपराक्रमी शिवि। शत्रु-घाती राजा प्रतर्दन। महारथी दिविरथ। युद्ध में काल की भांति प्रलय मचा देने वाला राजा भरत…इनके वंशज भी राम के दुस्सह तेज के सामने नहीं आ सके। कौन बचेगा? कब तक बचेगा। कहां छिपेगा!

राम सारी धरती को रौंद रहा है…सात द्वीप…नौखण्ड…

कोई भी नहीं बचा।

सब गए।

सब।

कोई योद्धा नहीं शेष रहा।

कुरुक्षेत्र में रक्त से भरे तीनों कुण्डों के निकट ही एक और कुण्ड भर गया।

चार कुण्ड।

किन्तु अभी भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई है। क्षत्राणियों के पेट में गर्भ सुरक्षित हैं। कौन जाने किसके-किसके पुत्र हों। क्षत्रिय पिता के पुत्र। वे भी मरेंगे। क्षत्राणियों के गर्भ से जन्म लेते ही उनके पुत्रों का भी वध करके राम अपने इस यज्ञ में पूर्णाहुति डालेगा। पिता का शव छूकर की गई प्रतिज्ञा को पूरी करेगा। कोई नहीं बचेगा। कोई नहीं। धरती क्षत्रियों से हीन हो जाएगी। उन गर्भों के जन्म लेने तक राम प्रतीक्षा करेगा।

काल चक्र की गति कोई नहीं जानता।

समय के साथ-साथ कुरुक्षेत्र में एक और कुण्ड रक्त से भर उठा।

क्षत्रियों के रक्त से भरे पांच कुण्ड।

राम ने सन्तुष्ट होकर उसी रक्त से पिता तर्पण का किया।

□

"जामदग्नेय। परशुराम।" ब्रह्मर्षि कश्यप ने दाहिना हाथ

उठाकर आशीर्वाद दिया, "तू दृढ़व्रती है। तू परमपराक्रमी है। तू समग्र धरती का विजेता है। तूने सातों द्वीपों को अपने वश में कर लिया है। भार्गव, तू यज्ञ कर। तेरे यज्ञ का पुरोधा मैं स्वयं बनूंगा।"

राम प्रसन्न हो उठा।

यज्ञ हुआ।

राम ने ब्राह्मण कश्यप को दुर्लभ रत्नों से जड़ी हुई चालीस हाथ लम्बी, चालीस हाथ चौड़ी और छत्तीस हाथ ऊंची सोने की विलक्षण वेदी समर्पित की। संकल्प करता हुआ बोला, "अपनी जीती हुई यह सारी धरती मैंने ब्रह्मर्षि कश्यप को दक्षिणा में दी।"

ब्रह्मर्षि कश्यप ने निकट ही बैठे तेजस्वी ऋत्विजों की ओर देखा।

राम ने ब्रह्मर्षि को चुप देखकर विनय पूर्वक कहा, "ब्रह्मर्षि प्रसन्न हों। आशीर्वाद दें।"

"जामदग्नेय, धरती तूने मुझे दान दी?"

"स्वीकार करें ब्रह्मर्षि।"

"यह धरती मेरी हुई?"

"आपकी हुई, ब्रह्मर्षि।" राम हंसा।

"तो अब तू धरती से निकल जा।"

"ब्रह्मर्षि!" राम चकित हुआ।

"कुछ और मत सोच, जामदग्नेय! मैं तेरा स्वभाव जानता हूं, तू क्रोधी है, पराक्रमी है। किन्तु अब मेरी धरती पर विनाश मत कर, वत्स। अब मेरी प्रजा को और आतंकित मत कर। तू जाकर दक्षिण समुद्र के तट पर अपना आश्रम बना। वहीं रह!"

राम पल भर सोचता रहा, फिर मलिन हंसी हंसकर

बोला—"ब्रह्मर्षि, प्रसन्न हों ! ऐसा ही होगा।"

ब्रह्मर्षि कश्यप ने विशाल सुवर्णवेदी को तोड़कर कई टुकड़े कर डाले। एक-एक खण्ड ऋत्विजों को देते हुए बोले, "यह तुम्हारा भाग है। पराक्रमी राम भार्गव से मिली सारी धरती मैं सारे ब्राह्मणों को देता हूँ। अपना-अपना भाग बांटकर निर्माण करो। जामदग्नेय राम के क्रोध से बचाने के लिए कुछ क्षत्राणियों ने जन्म लेते ही अपने पुत्रों को छिपा दिया था। वे सब शूद्रों और वैश्यों के समान कर्म करते हुए किसी प्रकार जीवित हैं। उन्हें खोजो। धरती का शासन क्षत्रिय ही कर सकता है। उन्हें शिक्षा दो। राजा बनाओ। व्यवस्था स्थापित करो।"

धनुष और परशु उठाकर राम खड़ा हो गया, "तब ब्रह्मर्षि, मुझे आज्ञा दें।"

ब्रह्मर्षि कश्यप भी उठ पड़े। दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुये बोले, "तू महान है, राम। जब तक धरती है, जब तक सूर्य और चन्द्र हैं; रक्त से भरे ये पाचों कुण्ड तेरे यश की गाथा कहेंगे। आज से इनका नाम 'रामह्रद' हुआ। यह स्थान समन्त पंचक तीर्थ बनेगा। तू यशस्वी हो। ज्ञानी हो। धर्माचरण कर।"

राम धीरे-धीरे आगे बढ़ गया।

□

लगा जैसे सहसा कोई वृक्षों की ओट में छिप गया है।

राम ठिठका, "कौन है?"

कोई उत्तर नहीं मिला।

किन्तु राम ने देखा तो है, कोई सहसा छिप गया।

आकृति कुछ परिचित-सी लगी थी। एक बार झलक भर मिली थी। राम स्मरण करने की चेष्टा करने लगा।

कौन है?

सहसा वह घूम कर वृक्ष के दूसरी ओर आ गया। हां। पहचान लिया।

"आयु!"

सामने स्तब्ध खड़ा योद्धा कांप उठा। भर्राये स्वर में बोला, "मित्र!"

राम ने लपक कर आयु को बांहों में भर लिया, "तू कहां चला गया था, आयु! जाते समय एक बार मिला भी नहीं। कहां था तू?"

आयु की आंखें चमक उठीं। गीले स्वर में बोला, "इधर से जा रहा था। सहसा तुझे देखकर ठमक गया।"

"अच्छा किया। फिर पता नहीं भेंट होती भी कि नहीं। तू प्रसन्न तो है?"

"तेरी कृपा है, मित्र।" पल भर रुक कर आयु ने सहमते-सहमते पूछा, "और तू? आर्य रुमण्वान, आर्य सुषेण..."

"मैं तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में लगा रहा। अग्रज रुमण्वान, अग्रज सुषेण, अग्रज वसु, अग्रज विश्वावसु, सुव्रत और सब...बहुत दिनों से किसी का कोई समाचार नहीं मिला इस बीच कब, कौन, कहां खो गया, कुछ ही पता नहीं चला फिर भी मैं हारा नहीं। तू जानता है, पिता की मृत्यु पर दु से कातर होकर मां ने इक्कीस बार छाती पीटकर रुदन कि था। मैंने इस परशु से इक्कीस बार धरती पर से क्षत्रियों नाश किया। उनके रक्त से पांच कुण्ड भर दिए और उ रक्त से मैंने पिता का तर्पण किया।"

"तू परशुराम है, मित्र! परमपराक्रमी है।"

"किन्तु तेरी प्रतिज्ञा...मैंने सुना है अभी भी धरती क्षत्रियों के कायर पुत्र..."

"अभय दे, मित्र..."

"उन्हें ब्रह्मर्षि कश्यप का आशीर्वाद मिला है, आयु। वे सुरक्षित हैं। मैंने यज्ञ किया था आयु। सारी धरती ब्रह्मर्षि को दक्षिणा में दे दी है। अब कश्यप फिर क्षत्रियों को राजा बनाएंगे। उनके हाथों में शासन सौंपेंगे। सौंपें। मैं तो धरती से मुक्त हुआ।"

"तू महान है। वन्दनीय है। क्षत्रियों दण्ड का पुत्र आयु तुझे प्रणाम करता है।"

"दीर्घजीवी हो, आयु!" राम धीरे से हंस पड़ा। चलने को तत्पर होकर बोला, "मुझे ब्रह्मर्षि का आदेश है कि उनकी धरती छोड़कर दक्षिण समुद्र के तट पर चला जाऊं। जा रहा हूं। अब शेष जीवन महेन्द्र पर्वत पर आश्रम बनाकर बिता दूंगा। अच्छा···" राम चल पड़ा।

आयु स्तब्ध खड़ा उस विराटकाय पुरुष की ओर देखता रहा। एक दिन उसके पराक्रम से सारी धरती पर उथल-पुथल हो गई थी—आज वह अकेला ही चला जा रहा है। धरती पर उसका कुछ भी नहीं रहा। न मोह, न अधिकार···

आयु की आंखें गीली हो आईं।

पदचाप दूर होती जा रही थी···

दूर···और दूर···

००